अंतराल

भाग 2

कक्षा 12 के लिए हिंदी (ऐच्छिक)
की पूरक पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 2007 चैत्र 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
दिसंबर 2009 पौष 1931
नवंबर 2010 अग्रहायण 1932
जनवरी 2012 माघ 1933
मार्च 2013 फाल्गुन 1934
नवंबर 2013 कार्तिक 1935
नवंबर 2014 कार्तिक 1936
दिसंबर 2016 पौष 1938
नवंबर 2017 अग्रहायण 1939

PD 30T RSP

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007*

₹ 30.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बुकमैन इंडिया, सी-4, डी.आई.सी. कैम्पस, इंडस्ट्रियल इस्टेट, मुज्ज़फ़रनगर (उ.प्र.) 251 001 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-708-6

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एनसीईआरटी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *अरुण चितकारा*
संपादक : *मीरा कांत*
सहायक उत्पादन अधिकारी : *सुनील कुमार*

आवरण एवं सज्जा
जोएल गिल

चित्र
जोएल गिल
भूषण शालिग्राम

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार एवं विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

कमला प्रसाद, *पूर्व उपाध्यक्ष,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

किरन गुप्ता, *पी.जी.टी.* (हिंदी), केंद्रीय विद्यालय, आई.एन.ए., नयी दिल्ली

चंद्रकांत देवताले, *कवि* एवं *साहित्यकार,* उज्जैन, मध्य प्रदेश

नज़ीर मोहम्मद, *प्रोफ़ेसर* (अवकाश प्राप्त), अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़

नीलम शर्मा, *पी.जी.टी.* (हिंदी), केंद्रीय विद्यालय, कैंट, नारायणा, नयी दिल्ली

प्रेमलता जैन, *रीडर,* अरविंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

मंजुरानी सिंह, *पी.जी.टी.* (हिंदी), केंद्रीय विद्यालय, जे.एन.यू. परिसर, नयी दिल्ली

मंजुला माथुर, *प्रोफ़ेसर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

महेंद्र पाल शर्मा, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली

रचना भाटिया, *प्रवक्ता,* राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नयी दिल्ली

रतन कुमार पांडेय, *अध्यक्ष,* हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

रमेश तिवारी, *प्रवक्ता,* कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

रोहिताश्व, *प्रोफ़ेसर* एवं *डीन,* गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

सत्यकाम, *प्रोफ़ेसर,* मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

लालचंद राम, *प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् निगरानी समिति द्वारा नामित श्री अशोक वाजपेयी और सुश्री शोभा वाजपेयी की आभारी है। पुस्तक-निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए हम विशेष आमंत्रित प्रोफ़ेसर दिलीप सिंह, *कुलसचिव*, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई का आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक में रचनाएँ शामिल करने के लिए जिन रचनाकारों तथा उनके परिजनों से अनुमति मिली है, हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए हम कंप्यूटर स्टेशन (भाषा विभाग) के *प्रभारी* परशराम कौशिक; *कॉपी एडीटर* दिग्विजय सिंह अत्री और सुप्रिया गुप्ता; *प्रूफ़ रीडर* कंचन शर्मा, अनामिका गोविल, दुर्गा देवी, करुणा और सविता तथा *डी.टी.पी. ऑपरेटर* जय प्रकाश राय, अरविंद शर्मा और सचिन कुमार के आभारी हैं।

यह पुस्तक

परिषद् पाठ्यपुस्तक निर्माण के साथ-साथ पूरक पठन के लिए भी पुस्तकों का निर्माण करती है। पाठ्यपुस्तक की अपनी सीमाएँ होती हैं। साहित्य की प्रमुख विधाओं की सभी प्रमुख रचनाओं को पाठ्यपुस्तक में समेटना संभव नहीं होता इसलिए विशिष्ट रचना या सामग्री, जो विद्यार्थी की उम्र, रुचि और योग्यता के अनुरूप हो, पूरक पठन की पुस्तक में दी जाती है। पूरक पठन की पुस्तक का उद्देश्य ही है पाठ्यपुस्तक के अधूरेपन को दूर करना, उसे पूर्ण बनाना। द्रुत पठन के लिए भी विद्यार्थी पूरक पठन की पुस्तक का उपयोग कर सकते हैं। इससे पहले पूरक पुस्तक के रूप में किसी एक विधा की पुस्तक ही निर्धारित की जाती थी किंतु व्यावहारिकता की दृष्टि से और पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम की मूल अवधारणा के मुताबिक इस बार कई विधाओं को एक साथ पूरक पठन की पुस्तक में समाहित किया गया है, ताकि विद्यार्थी ज़्यादा साहित्यिक विधाओं से परिचित हो सकें।

12वीं कक्षा के विद्यार्थियों का भाषा-ज्ञान और उनकी साहित्यक समझ एक उचित सीमा तक पहुँच चुकी होती है। सामाजिक सरोकारों और अपने परिवेश के प्रति भी 17-18 वर्ष के विद्यार्थी पूरी तरह जागरूक होते हैं। 12वीं कक्षा की पूरक पठन की यह पुस्तक **अंतराल भाग 2** तैयार करते समय इन बातों का ध्यान रखा गया है। इस पुस्तक में जो चार पाठ संकलित हैं उन चारों के चयन के पीछे उनकी साहित्यिकता का स्तर तो निर्णायक है ही, यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि इन सब से भारत के अलग-अलग अंचलों की जीवन पद्धति और संबंधित भौगोलिक क्षेत्र की समस्याओं तथा जनजीवन की विशिष्टताओं पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

सूरदास की झोंपड़ी प्रेमचंद के उपन्यास **रंगभूमि** का वह अंश है जिसमें दलित व शोषित जनों की व्यथा अंकित है। सत्ता और पूँजी के गठजोड़ से सूरदास के झोंपड़ें में आग लगा दी जाती है। ऐसे समय में गाँव का वह पूरा समूह जो सूरदास के विरोध में है एकजुट होकर सामने आता है। इस पाठ की सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें सूरदास जैसे लाचार और बेबस व्यक्ति की जिजीविषा एवं उसके संघर्ष का अनूठा चित्रण हुआ है। यह पाठ भारत के पूर्वी अंचल का अच्छा चित्र खींचता है।

आरोहण संजीव की एक ऐसी कहानी है जो पहाड़ी क्षेत्रों के मेहनतकश लोगों की ज़िंदगी को रेखांकित करती है। पहाड़ी लोगों की सरलता, निश्छलता के बरक्स शहरी जीवन की दिखावट और बनावट को सामने रखकर संजीव ने इस कहानी में कई प्रश्न उठाए हैं। घटना प्रधान और संवाद संकुल होना इस कथा की विशेषता है, जो इसे पठनीय भी बनाती है और पाठक के मन में विचारोत्तेजना भी पैदा करती है।

बिस्कोहर की माटी विश्वनाथ त्रिपाठी की आत्मकथा **नंगातलाई का गाँव** का एक अंश है। यह अंश गाँव-स्मृति के परिप्रेक्ष्य में रचा गया है। इसमें सिर्फ़ नॉस्टेल्जिया नहीं है, प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों की मार्मिक पड़ताल भी निहित है। जीवन की स्थितियाँ ऋतुओं के साथ कैसे बदलती हैं और प्रकृति के प्रकोपों को ग्रामीण जीवन किस तरह झेलता है तथा उसी प्रकृति का वह किस तरह सहज उपयोग करता है और उससे कितना अटूट प्रेम करता है—ये सारे भाव मिलकर इस पाठांश की अद्‌भुत अभिव्यंजना को प्रमाणित करते हैं। एक प्रकार से देखा जाए तो यह पाठ ग्रामीण जीवन के रूप, रस और गंध को उकेरने वाला एक मार्मिक पाठ है।

चौथा पाठ **अपना मालवा** समाचार-पत्र **जनसत्ता** में प्रकाशित प्रभाष जोशी के आलेख की प्रस्तुति है जिसमें मालवा क्षेत्र का जनजीवन मुखर होकर सामने आया है। यह पाठ जल और पर्यावरण संबंधी समस्याओं को केंद्र में रखे हुए है। कितने जीवट के साथ इस क्षेत्र के लोग प्राकृतिक आपदाओं का सामना करते हैं, उसका प्रभावशाली चित्र इस पाठ में है। साथ ही यह पाठ उस तकनीकी और प्रौद्योगिकी विकास पर प्रहार करता है जिसके चलते ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों की अस्मिता नष्ट हो रही है।

पूरक पठन की इस पुस्तक में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि पाठों की संरचना और उनकी भाषा बोझिल न हो। सरलता और सहजता भाषा की बोधगम्यता की सबसे बड़ी कसौटी है। यह मानकर इन पाठों का चयन किया गया है। इन सभी पाठों में बोलचाल की हिंदी का सुंदर प्रयोग हुआ है। ठस गद्य की जगह ये सभी पाठ संवादों के इर्द-गिर्द बुने हुए हैं जिनसे इनकी पठनीयता और संप्रेषणीयता दोनों स्वतः बढ़ जाती है। इन पाठों में बोलियों से संपृक्त हिंदी का वह रूप भी सामने आता है जिसका प्रयोग आमजन करते हैं। कुल मिलाकर ये सभी पाठ एक पूरक पुस्तक के आदर्श पर खरे उतरते हैं। ऐसे पाठ जिन्हें स्वतः पढ़ा जा सके और उनके साथ अपनी समीपता का संबंध जोड़ा जा सके।

पाठों के अंत में शब्दार्थ और टिप्पणी के साथ-साथ प्रश्न-अभ्यास एवं योग्यता-विस्तार दिए गए हैं। इनका उद्देश्य है कि अध्ययन करते समय विद्यार्थियों के समक्ष यदि भाषा अथवा कथ्य संबंधी कोई समस्या उपस्थित हो तो ये उसका तत्काल समाधान प्रस्तुत कर सकें।

पुस्तक के अंत में रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, ताकि विद्यार्थी अगर रुचि लें तो उनकी अन्य रचनाएँ खोजकर पढ़ सकें और रचनाकार के बारे में भी जानकारी हासिल कर सकें।

आशा है विद्यार्थियों की भाषिक तथा साहित्यिक रुचियों के विकास की दृष्टि से पूरक पठन की यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। विद्यार्थी, पुस्तक और अध्यापक के बीच एक संवादात्मक रिश्ता कायम हो, यह पुस्तक इस दिशा में एक प्रयास है। यह प्रयास निरंतर बेहतर होता रहे, इसके लिए आपकी प्रतिक्रिया एवं सुझाव अपेक्षित हैं। ❐

विषय–सूची

आमुख *iii*

यह पुस्तक *vii*

1

सूरदास की झोंपड़ी 1
प्रेमचंद

2

आरोहण 12
संजीव

3

बिस्कोहर की माटी 33
विश्वनाथ त्रिपाठी

4

अपना मालवा–खाऊ-उजाड़ू सभ्यता में 42
प्रभाष जोशी

लेखक परिचय 49

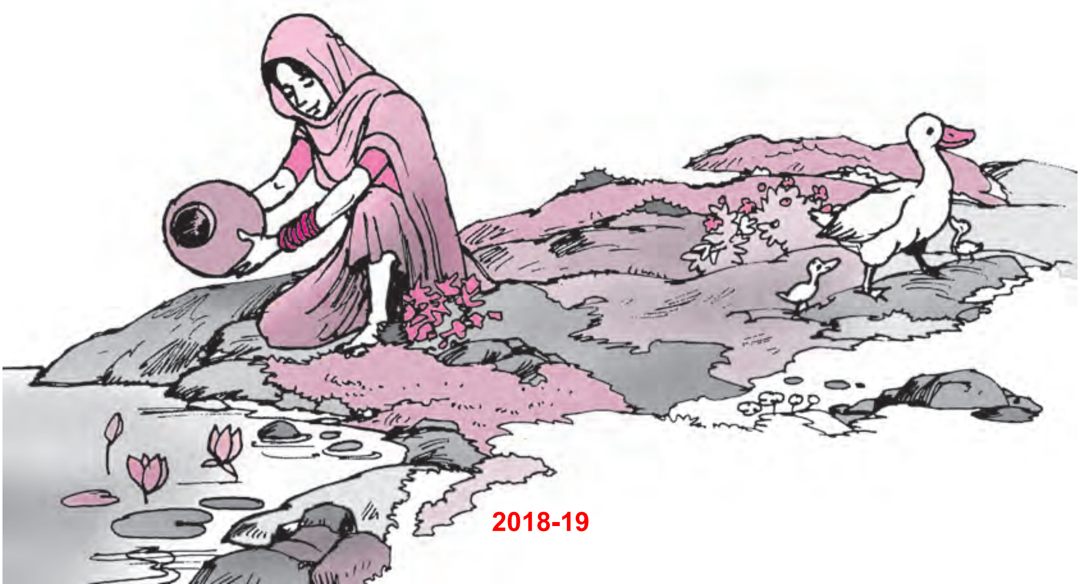

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्‌द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

पाठ परिचय

1

सूरदास की झोंपड़ी

सूरदास की झोंपड़ी *प्रेमचंद के उपन्यास* ***रंगभूमि*** *का एक अंश है। एक दृष्टिहीन व्यक्ति जितना बेबस और लाचार जीवन जीने को अभिशप्त होता है, सूरदास का चरित्र ठीक इसके विपरीत है। सूरदास अपनी परिस्थितियों से जितना दुखी व आहत है उससे कहीं अधिक आहत है भैरों और जगधर द्वारा किए जा रहे अपमान से, उनकी ईर्ष्या से।*

भैरों की पत्नी सुभागी भैरों की मार के डर से सूरदास की झोंपड़ी में छिप जाती है और सुभागी को मारने भैरों सूरदास की झोंपड़ी में घुस जाता है, किंतु सूरदास के हस्तक्षेप से वह उसे मार नहीं पाता। इस घटना को लेकर पूरे मुहल्ले में सूरदास की बदनामी होती है। जगधर और भैरों तथा अन्य लोग उसके चरित्र पर प्रश्न उठाते हैं। इस घटना से उसे इतनी आत्मग्लानि हुई कि वह फूट-फूटकर रोया। भैरों को उकसाने और भड़काने में जगधर की प्रमुख भूमिका रही। उसे ईर्ष्या इस बात की थी कि सूरदास चैन से रहता है, खाता-पीता है, उसके चेहरे पर निराशा नहीं झलकती, जबकि जगधर को खाने-कमाने के लाले पड़े हुए हैं। भैरों की बहुरिया सुभागी पर जगधर नज़र भी रखता था। सूरदास और सुभागी के संबंधों की चर्चा पूरे मुहल्ले में इतनी हुई कि भैरों अपने अपमान और बदनामी का बदला लेने की सोच बैठा। उसने गाँठ बाँध ली कि जब तक सूरे को रुलाएगा, तड़पाएगा नहीं तब तक उसे चैन नहीं मिलेगा। उसे लगा समाज में इतनी बदनामी तो हो ही गई, भोज-भात बिरादरी को कहाँ से देगा? भैरों सूरदास पर नज़र रखने लगा। अंततः उसके रुपयों की थैली उठा ले गया और सूरदास की झोंपड़ी में आग लगा दी।

सूरदास के चरित्र की विशेषता यह है कि झोंपड़ी के जला दिए जाने के बावजूद वह किसी से प्रतिशोध लेने में विश्वास नहीं करता बल्कि पुनर्निर्माण में विश्वास करता है। इसीलिए वह मिठुआ के सवाल–"जो कोई सौ लाख बार झोंपड़ी को आग लगा दे तो" के जवाब में दृढ़ता के साथ उत्तर देता है– "तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे"।

प्रेमचंद

सूरदास की झोंपड़ी

रात के दो बजे होंगे कि अकस्मात् सूरदास की झोंपड़ी से ज्वाला उठी। लोग अपने-अपने द्वारों पर सो रहे थे। निद्रावस्था में भी उपचेतना जागती रहती है। दम-के-दम में सैकड़ों आदमी जमा हो गए। आसमान पर लाली छाई हुई थी, ज्वालाएँ लपक-लपककर आकाश की ओर दौड़ने लगीं। कभी उनका आकार किसी मंदिर के स्वर्ण-कलश का-सा हो जाता था, कभी वे वायु के झोंकों से यों कंपित होने लगती थीं, मानो जल में चाँद का प्रतिबिंब है। आग बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा था पर झोंपड़े की आग, ईर्ष्या की आग की भाँति कभी नहीं बुझती। कोई पानी ला रहा था, कोई यों ही शोर मचा रहा था किंतु अधिकांश लोग चुपचाप खड़े नैराश्यपूर्ण दृष्टि से अग्निदाह को देख रहे थे, मानो किसी मित्र की चिताग्नि है।

सहसा सूरदास दौड़ा हुआ आया और चुपचाप ज्वाला के प्रकाश में खड़ा हो गया। बजरंगी ने पूछा–यह कैसे लगी सूरे, चूल्हे में तो आग नहीं छोड़ दी थी?

सूरदास – झोंपड़े में जाने का कोई रास्ता ही नहीं है?

बजरंगी – अब तो अंदर-बाहर सब एक हो गया है। दीवारें जल रही हैं।

सूरदास – किसी तरह नहीं जा सकता?

बजरंगी – कैसे जाओगे? देखते नहीं हो, यहाँ तक लपटें आ रही हैं!

जगधर – सूरे, क्या आज चूल्हा ठंडा नहीं किया था?

नायकराम – चूल्हा ठंडा किया होता, तो दुश्मनों का कलेजा कैसे ठंडा होता।

जगधर – पंडाजी, मेरा लड़का काम न आए, अगर मुझे कुछ भी मालूम हो। तुम मुझ पर नाहक सुभा करते हो।

नायकराम – मैं जानता हूँ जिसने लगाई है। बिगाड़ न दूँ, तो कहना।

ठाकुरदीन – तुम क्या बिगाड़ोगे, भगवान आप ही बिगाड़ देंगे। इसी तरह जब मेरे घर में चोरी हुई थी, तो सब स्वाहा हो गया।

जगधर – जिसके मन में इतनी खुटाई हो, भगवान उसका सत्यानाश कर दें।

सूरदास – अब तो लपट नहीं आती।

बजरंगी – हाँ, फूस जल गया, अब धरन जल रही है।

सूरदास – अब तो अंदर जा सकता हूँ?

नायकराम – अंदर तो जा सकते हो; पर बाहर नहीं निकल सकते। अब चलो आराम से सो रहो जो होना था, हो गया। पछताने से क्या होगा?

सूरदास – हाँ, सो रहूँगा, जल्दी क्या है!

थोड़ी देर में रही-सही आग भी बुझ गई। कुशल यह हुई कि और किसी के घर में आग न लगी। सब लोग इस दुर्घटना पर आलोचनाएँ करते हुए विदा हुए। सन्नाटा छा गया। किंतु सूरदास अब भी वहीं बैठा हुआ था। उसे झोंपड़े के जल जाने का दु:ख न था, बरतन आदि के जल जाने का भी दु:ख न था; दु:ख था उस पोटली का, जो उसकी उम्र भर की कमाई थी, जो उसके जीवन की सारी आशाओं का आधार थी, जो उसकी सारी यातनाओं और रचनाओं का निष्कर्ष थी। इस छोटी सी पोटली में उसका, उसके पितरों का और उसके नामलेवा का उद्धार संचित था। यही उसके लोक और परलोक, उसकी दीन-दुनिया का आशा-दीपक थी। उसने सोचा–पोटली के साथ रुपये थोड़े ही जल गए होंगे? अगर रुपये पिघल भी गए होंगे, तो चाँदी कहाँ जाएगी? क्या जानता था कि आज यह विपत्ति आनेवाली है, नहीं तो यहीं न सोता! पहले तो कोई झोंपड़ी के पास आता ही न और अगर आग लगाता भी, तो पोटली को पहले ही निकाल लेता। सच तो यों है कि मुझे यहाँ रुपये रखने ही न चाहिए थे। पर रखता कहाँ? मुहल्ले में ऐसा कौन है, जिसे रखने को देता? हाय! पूरे पाँच सौ रुपये थे, कुछ पैसे ऊपर हो गए थे। क्या इसी दिन के लिए पैसे-पैसे बटोर रहा था?

खा लिया होता, तो कुछ तस्कीन होती। क्या सोचता था और क्या हुआ! गया जाकर पितरों को पिंडा देने का इरादा किया था। अब उनसे कैसे गला छूटेगा? सोचता था, कहीं मिठुआ की सगाई ठहर जाए, तो कर डालूँ। बहू घर में आ जाए, तो एक रोटी खाने को मिले! अपने हाथों ठोंक-ठोंककर खाते एक जुग बीत गया। बड़ी भूल हुई। चाहिए था कि जैसे-जैसे हाथ में रुपये आते, एक-एक काम पूरा करता जाता। बहुत पाँव फैलाने का यही फल है!

उस समय तक राख ठंडी हो चुकी थी। सूरदास अटकल से द्वार की ओर झोंपड़े में घुसा; पर दो-तीन पग के बाद एकाएक पाँव भूबल में पड़ गया। ऊपर राख थी, लेकिन नीचे आग। तुरंत पाँव खींच लिया और अपनी लकड़ी से राख को उलटने-पलटने लगा, जिससे नीचे की आग भी जल्द राख हो जाए। आध घंटे में उसने सारी राख नीचे से ऊपर कर दी, और तब फिर डरते-डरते राख में पैर रखा। राख गरम थी, पर असह्य न थी। उसने उसी जगह की सीध में राख को टटोलना शुरू किया, जहाँ छप्पर में पोटली रखी थी। उसका दिल धड़क रहा था। उसे विश्वास था कि रुपये मिलें या न मिलें, पर चाँदी तो कहीं गई ही नहीं। सहसा वह उछल पड़ा, कोई भारी चीज़ हाथ लगी। उठा लिया; पर टटोलकर देखा, तो मालूम हुआ ईंट का टुकड़ा है। फिर टटोलने लगा, जैसे कोई आदमी पानी में मछलियाँ टटोले। कोई चीज़ हाथ न लगी। तब तो उसने नैराश्य की उतावली और अधीरता के साथ सारी राख छान डाली। एक-एक मुट्ठी राख हाथ में लेकर देखी। लोटा मिला, तवा मिला, किंतु पोटली न मिली। उसका वह पैर, जो अब तक सीढ़ी पर था, फिसल गया और अब वह अथाह गहराई में जा पड़ा। उसके मुख से सहसा एक चीख निकल आई। वह वहीं राख पर बैठ गया और बिलख-बिलखकर रोने लगा। यह फूस की राख न थी, उसकी अभिलाषाओं की राख थी। अपनी बेबसी का इतना दुःख उसे कभी न हुआ था।

तड़का हो गया, सूरदास अब राख के ढेर को बटोरकर एक जगह कर रहा था। आशा से ज़्यादा दीर्घजीवी और कोई वस्तु नहीं होती।

उसी समय जगधर आकर बोला—सूरे, सच कहना, तुम्हें मुझ पर तो सुभा नहीं है?

सूरे को सुभा तो था, पर उसने इसे छिपाकर कहा—तुम्हारे ऊपर क्यों सुभा करूँगा? तुमसे मेरी कौन सी अदावत थी?

जगधर – मुहल्लेवाले तुम्हें भड़काएँगे, पर मैं भगवान से कहता हूँ, मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।

सूरदास – अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। कौन जाने, किसी ने लगा दी या किसी की चिलम से उड़कर लग गई? यह भी तो हो सकता है कि चूल्हे में आग रह गई हो। बिना जाने-बूझे किस पर सुभा करूँ?

जगधर – इसी से तुम्हें चिता दिया कि कहीं सुभे में मैं भी न मारा जाऊँ।

सूरदास – तुम्हारी तरफ से मेरा दिल साफ है।

जगधर को भैरों की बातों से अब यह विश्वास हो गया कि यह उसी की शरारत है। उसने सूरदास को रुलाने की बात कही थी। उस धमकी को इस तरह पूरा किया। वह वहाँ से सीधे भैरों के पास गया। वह चुपचाप बैठा नारियल का हुक्का पी रहा था, पर मुख से चिंता और घबराहट झलक रही थी। जगधर को देखते ही बोला–कुछ सुना; लोग क्या बातचीत कर रहे हैं?

जगधर – सब लोग तुम्हारे ऊपर सुभा करते हैं। नायकराम की धमकी तो तुमने अपने कानों से सुनी।

भैरों – यहाँ ऐसी धमकियों की परवा नहीं है। सबूत क्या है कि मैंने लगाई?

जगधर – सच कहो, तुम्हीं ने लगाई?

भैरों – हाँ, चुपके से एक दियासलाई लगा दी।

जगधर – मैं कुछ-कुछ पहले ही समझ गया था पर यह तुमने बुरा किया। झोंपड़ी जलाने से क्या मिला? दो-चार दिन में फिर दूसरी झोंपड़ी तैयार हो जाएगी।

भैरों – कुछ हो, दिल की आग तो ठंडी हो गई! यह देखो!

यह कहकर उसने एक थैली दिखाई, जिसका रंग धुएँ से काला हो गया था। जगधर ने उत्सुक होकर पूछा–इसमें क्या है? अरे! इसमें तो रुपये भरे हुए हैं।

भैरों – यह सुभागी को बहका ले जाने का जरीबाना है।

जगधर – सच बताओ, ये रुपये कहाँ मिले?

भैरों – उसी झोंपड़े में। बड़े जतन से धरन की आड़ में रखे हुए थे। पाजी रोज राहगीरों को ठग-ठगकर पैसे लाता था और इसी थैली में रखता था। मैंने गिने हैं। पाँच सौ से ऊपर हैं। न जाने कैसे इतने रुपये जमा हो गए। बच्चू को इन्हीं रुपयों की गरमी थी। अब गरमी निकल गई। अब देखूँ किस बल पर उछलते हैं। बिरादरी को भोज-भात देने का सामान हो गया। नहीं तो इस बखत रुपये कहाँ मिलते? आजकल तो देखते ही हो, बल्लमटेरों के मारे बिकरी कितनी मंदी है।

जगधर – मेरी तो सलाह है कि रुपये उसे लौटा दो। बड़ी मसक्कत की कमाई है। हजम न होगी।

जगधर दिल का खोटा आदमी नहीं था; पर इस समय उसने यह सलाह उसे नेकनीयती से नहीं, हसद से दी थी। उसे यह असह्य था कि भैरों के हाथ इतने रुपये लग जाएँ। भैरों आधे रुपये उसे देता, तो शायद उसे तस्कीन हो जाती पर भैरों से यह आशा न की जा सकती थी। बेपरवाही से बोला–मुझे अच्छी तरह हजम हो जाएगी। हाथ में आए हुए रुपये को नहीं लौटा सकता। उसने तो भीख माँगकर ही जमा किए हैं, गेहूँ तो नहीं तौला था।

जगधर – पुलिस सब खा जाएगी।

भैरों – सूरे पुलिस में न जाएगा। रो-धोकर चुप हो जाएगा।

जगधर – गरीब की हाय बड़ी जानलेवा होती है।

भैरों – वह गरीब है! अंधा होने से ही गरीब हो गया? जो आदमी दूसरों की औरतों पर डोरे डाले, जिसके पास सैकड़ों रुपये जमा हों, जो दूसरों को रुपये उधार देता हो, वह गरीब है? गरीब जो कहो, तो हम–तुम हैं। घर में ढूँढ़ आओ, एक पूरा रुपया न निकलेगा। ऐसे पापियों को गरीब नहीं कहते। अब भी मेरे दिल का काँटा नहीं निकला। जब तक उसे रोते न देखूँगा, यह काँटा न निकलेगा। जिसने मेरी आबरू बिगाड़ दी, उसके साथ जो चाहे करूँ, मुझे पाप नहीं लग सकता।

जगधर का मन आज खोंचा लेकर गलियों का चक्कर लगाने में न लगा। छाती पर साँप लोट रहा था–इसे दम–के–दम में इतने रुपये मिल गए, अब मौज उड़ाएगा। तकदीर इस तरह खुलती है। यहाँ कभी पड़ा हुआ पैसा भी न मिला। पाप–पुन्न की कोई बात नहीं। मैं ही कौन दिनभर पुन्न किया करता हूँ? दमड़ी–छदाम–कौड़ियों के लिए टेनी मारता हूँ! बाट खोटे रखता हूँ, तेल की मिठाई को घी की कहकर बेचता हूँ। ईमान गँवाने पर भी कुछ नहीं लगता। जानता हूँ, यह बुरा काम है पर बाल–बच्चों को पालना भी तो ज़रूरी है। इसने ईमान खोया, तो कुछ लेकर खोया, गुनाह बेलज्जत नहीं रहा। अब दो–तीन दुकानों का और ठेका ले लेगा। ऐसा ही कोई माल मेरे हाथ भी पड़ जाता, तो जिंदगानी सुफल हो जाती।

जगधर के मन में ईर्ष्या का अंकुर जमा। वह भैरों के घर से लौटा तो देखा कि सूरदास राख को बटोरकर उसे आटे की भाँति गूँथ रहा है। सारा शरीर भस्म से ढका हुआ है और पसीने की धारें निकल रही हैं। बोला–सूरे, क्या ढूँढ़ते हो?

सूरदास – कुछ नहीं। यहाँ रखा ही क्या था! यही लोटा–तवा देख रहा था।

जगधर – और वह थैली किसकी है, जो भैरों के पास है?

सूरदास चौंका। क्या इसीलिए भैरों आया था? जरूर यही बात है। घर में आग लगाने के पहले रुपये निकाल लिए होंगे।

लेकिन अंधे भिखारी के लिए दरिद्रता इतनी लज्जा की बात नहीं है, जितना धन। सूरदास जगधर से अपनी आर्थिक हानि को गुप्त रखना चाहता था। वह गया जाकर पिंडदान करना चाहता था, मिठुआ का ब्याह करना चाहता था, कुआँ बनवाना चाहता था, किंतु इस ढंग से कि लोगों को आश्चर्य हो कि इसके पास रुपये कहाँ से आए, लोग यही समझें कि भगवान दीनजनों की सहायता करते हैं। भिखारियों के लिए धन–संचय पाप–संचय से कम अपमान की बात नहीं है। बोला–मेरे पास थैली–वैली कहाँ? होगी किसी की। थैली होती, तो भीख माँगता?

जगधर – मुझसे उड़ते हो? भैरों मुझसे स्वयं कह रहा था कि झोंपड़े में धरन के ऊपर यह थैली मिली। पाँच सौ रुपये से कुछ बेसी हैं।

सूरदास – वह तुमसे हँसी करता होगा। साढ़े पाँच रुपये तो कभी जुड़े ही नहीं, साढ़े पाँच सौ कहाँ से आते!

इतने में सुभागी वहाँ आ पहुँची। रातभर मंदिर के पिछवाड़े अमरूद के बाग में छिपी बैठी थी। वह जानती थी, आग भैरों ने लगाई है। भैरों ने उस पर जो कलंक लगाया था, उसकी उसे विशेष चिंता न थी क्योंकि वह जानती थी किसी को इस पर विश्वास न आएगा। लेकिन मेरे कारण सूरदास का यों सर्वनाश हो जाए, इसका उसे बड़ा दुःख था। वह इस समय उसको तस्कीन देने आई थी। जगधर को वहाँ खड़े देखा, तो झिझकी। भय हुआ, कहीं यह मुझे पकड़ न ले। जगधर को वह भैरों ही का दूसरा अवतार समझती थी। उसने प्रण कर लिया था कि अब भैरों के घर न जाऊँगी, अलग रहूँगी और मेहनत–मजूरी करके जीवन का निर्वाह करूँगी। यहाँ कौन लड़के रो रहे हैं, एक मेरा ही पेट उसे भारी है न? अब अकेले ठोंके और खाए, और बुढ़िया के चरण धो–धोकर पिए, मुझसे तो यह नहीं हो सकता। इतने दिन हुए, इसने कभी अपने मन से धेले का सेंदुर भी न दिया होगा, तो मैं क्यों उसके लिए मरूँ?

वह पीछे लौटना ही चाहती थी कि जगधर ने पुकारा—सुभागी, कहाँ जाती है? देखी अपने खसम की करतूत, बेचारे सूरदास को कहीं का न रखा।

सुभागी ने समझा, मुझे झाँसा दे रहा है। मेरे पेट की थाह लेने के लिए यह जाल फेंका है। व्यंग्य से बोली—उसके गुरु तो तुम्हीं हो, तुम्हीं ने मंत्र दिया होगा।

जगधर – हाँ, यही मेरा काम है, चोरी–डाका न सिखाऊँ, तो रोटियाँ क्योंकर चलें...! जब तक समझता था, भला आदमी है, साथ बैठता था, हँसता–बोलता था, लेकिन आज से कभी उसके पास बैठते देखा, तो कान पकड़ लेना। जो आदमी दूसरों के घर में आग लगाए, गरीबों के रुपये चुरा ले जाए, वह अगर मेरा बेटा भी हो तो उसकी सूरत न देखूँ। सूरदास ने न जाने कितने जतन से पाँच सौ रुपये बटोरे थे। वह सब उड़ा ले गया। कहता हूँ, लौटा दो, तो लड़ने पर तैयार होता है।

सूरदास– फिर वही रट लगाए जाते हो। कह दिया कि मेरे पास रुपये नहीं थे, कहीं और जगह से मार लाया होगा, मेरे पास पाँच सौ रुपये होते, तो चैन की बंसी न बजाता, दूसरों के सामने हाथ क्यों पसारता?

जगधर – सूरे, अगर तुम भरी गंगा में कहो कि मेरे रुपये नहीं हैं, तो मैं न मानूँगा। मैंने अपनी आँखों से वह थैली देखी है। भैरों ने अपने मुँह से कहा कि यह थैली झोंपड़े में धरन के ऊपर मिली। तुम्हारी बात कैसे मान लूँ?

सुभागी – तुमने थैली देखी है?

जगधर – हाँ, देखी नहीं तो क्या झूठ बोल रहा हूँ?

सुभागी – सूरदास, सच–सच बता दो, रुपये तुम्हारे हैं!

सूरदास – पागल हो गई है क्या? इनकी बातों में आ जाती है! भला मेरे पास रुपये कहाँ से आते?

जगधर – इनसे पूछ, रुपये न थे, तो इस घड़ी राख बटोरकर क्या ढूँढ़ रहे थे?

सुभागी ने सूरदास के चेहरे की तरफ़ अन्वेषण की दृष्टि से देखा। उसकी उस बीमार की-सी दशा थी, जो अपने प्रियजनों की तस्कीन के लिए अपनी असह्य वेदना को छिपाने का असफल प्रयत्न कर रहा हो। जगधर के निकट आकर बोली–रुपये जरूर थे, इसका चेहरा कहे देता है।

जगधर – मैंने थैली अपनी आँखों से देखी है।

सुभागी – अब चाहे वह मुझे मारे या निकाले पर रहूँगी उसी के घर। कहाँ-कहाँ थैली को छिपाएगा? कभी तो मेरे हाथ लगेगी। मेरे ही कारण इस पर यह बिपत पड़ी है। मैंने ही उजाड़ा है, मैं ही बसाऊँगी। जब तक इसके रुपये न दिला दूँगी, मुझे चैन न आएगी।

यह कहकर वह सूरदास से बोली–तो अब रहोगे कहाँ?

सूरदास ने यह बात न सुनी। वह सोच रहा था–रुपये मैंने ही तो कमाए थे, क्या फिर नहीं कमा सकता? यही न होगा, जो काम इस साल होता, वह कुछ दिनों के बाद होगा। मेरे रुपये थे ही नहीं, शायद उस जन्म में मैंने भैरों के रुपये चुराए होंगे। यह उसी का दंड मिला है। मगर बेचारी सुभागी का अब क्या हाल होगा? भैरों उसे अपने घर में कभी न रखेगा। बिचारी कहाँ मारी-मारी फिरेगी! यह कलंक भी मेरे सिर लगना था। कहीं का न हुआ। धन गया, घर गया, आबरू गई; ज़मीन बच रही है, यह भी न जाने, जाएगी या बचेगी। अंधापन ही क्या थोड़ी बिपत थी कि नित ही एक-न-एक चपत पड़ती रहती है। जिसके जी में आता है, चार खोटी-खरी सुना देता है।

इन दुःखजनक विचारों से मर्माहत-सा होकर वह रोने लगा। सुभागी जगधर के साथ भैरों के घर की ओर चली जा रही थी और यहाँ सूरदास अकेला बैठा हुआ रो रहा था।

सहसा वह चौंक पड़ा। किसी ओर से आवाज़ आई–तुम खेल में रोते हो!

मिठुआ घीसू के घर से रोता चला आता था, शायद घीसू ने मारा था। इस पर घीसू उसे चिढ़ा रहा था–खेल में रोते हो!

सूरदास कहाँ तो नैराश्य, ग्लानि, चिंता और क्षोभ के अपार जल में गोते खा रहा था, कहाँ यह चेतावनी सुनते ही उसे ऐसा मालूम हुआ, किसी ने उसका हाथ पकड़कर किनारे पर खड़ा कर दिया। वाह! मैं तो खेल में रोता हूँ। कितनी बुरी बात है! लड़के भी खेल में रोना बुरा समझते हैं, रोनेवाले को चिढ़ाते हैं, और मैं खेल में रोता हूँ। सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाज़ी-पर-बाज़ी हारते हैं, चोट-पर-चोट खाते हैं, धक्के-पर-धक्के सहते हैं पर मैदान में डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं। खेल में रोना कैसा? खेल हँसने के लिए, दिल बहलाने के लिए है, रोने के लिए नहीं।

सूरदास उठ खड़ा हुआ, और विजय-गर्व की तरंग में राख के ढेर को दोनों हाथों से उड़ाने लगा।

आवेग में हम उद्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाते हैं। वह संयम कहाँ है, जो शत्रु पर विजय पाने के बाद तलवार को म्यान में कर ले?

एक क्षण में मिठुआ, घीसू और मुहल्ले के बीसों लड़के आकर इस भस्म-स्तूप के चारों ओर जमा हो गए और मारे प्रश्नों के सूरदास को परेशान कर दिया। उसे राख फेंकते देखकर सबों को खेल हाथ आया। राख की वर्षा होने लगी। दम-के-दम में सारी राख बिखर गई, भूमि पर केवल काला निशान रह गया।

mिठुआ ने पूछा—दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?

सूरदास – दूसरा घर बनाएँगे।

मिठुआ – और कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास – तो फिर बनाएँगे।

मिठुआ – और फिर लगा दे?

सूरदास – तो हम भी फिर बनाएँगे।

मिठुआ – और कोई हजार बार लगा दे?

सूरदास – तो हम हजार बार बनाएँगे।

बालकों को संख्याओं से विशेष रुचि होती है। मिठुआ ने फिर पूछा—और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया—तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे।

❐ *'रंगभूमि' उपन्यास का अंश*

प्रश्न-अभ्यास

1. 'चूल्हा ठंडा किया होता, तो दुश्मनों का कलेजा कैसे ठंडा होता?' नायकराम के इस कथन में निहित भाव को स्पष्ट कीजिए।
2. भैरों ने सूरदास की झोपड़ी क्यों जलाई?
3. 'यह फूस की राख न थी, उसकी अभिलाषाओं की राख थी।' संदर्भ सहित विवेचन कीजिए।
4. जगधर के मन में किस तरह का ईर्ष्या-भाव जगा और क्यों?
5. सूरदास जगधर से अपनी आर्थिक हानि को गुप्त क्यों रखना चाहता था?
6. 'सूरदास उठ खड़ा हुआ और विजय-गर्व की तरंग में राख के ढेर को दोनों हाथों से उड़ाने लगा।' इस कथन के संदर्भ में सूरदास की मनोदशा का वर्णन कीजिए।
7. 'तो हम सौ लाख बार बनाएँगे' इस कथन के संदर्भ में सूरदास के चरित्र का विवेचन कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. इस पाठ का नाट्य रूपांतर कर उसकी प्रस्तुति कीजिए।
2. प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' का संक्षिप्त संस्करण पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

उपचेतना	–	नींद में जागते रहने का अहसास
अग्निदाह	–	आग की लपटें, आग का दहन
चिताग्नि	–	चिता में लगी अग्नि
खुटाई	–	खोट
तस्कीन	–	तसल्ली, दिलासा
भूबल	–	ऊपर राख नीचे आग
अदावत	–	दुश्मनी
जरीबाना	–	जुर्माना, दंड
नाहक	–	बेमतलब, अकारण
रुपयों की गरमी	–	धन का घमंड
बल्लमटेर	–	लुटेरे, गुंडे-बदमाश
मसक्कत	–	मशक्कत, मेहनत, परिश्रम
हसद	–	ईर्ष्या, डाह
छाती पर साँप लोटना	–	ईर्ष्या करना
टेनी मारना	–	कम तौलना
बाट खोटे रखना	–	तौल सही नहीं रखना
ईमान गँवाना	–	बेईमानी करना
गुनाह बेलज्जत नहीं रहना	–	बिना किसी लाभ के गुनाह नहीं करना
झिझकी	–	संकोच किया
झाँसा देना	–	भ्रमित करना
पेट की थाह लेना	–	अंदर की बात जानना
ईमान बेचना	–	विवशता के कारण झूठा या गलत आचरण करना
गोते खाना	–	इधर-उधर डूबना-उतराना
विजय-गर्व की तरंग	–	विजय की खुशी, खुशी की उमंग में
उद्दिष्ट	–	निश्चित, निर्धारित

2

आरोहण

पर्वतारोहण अब पाठ्यचर्या का अंश बन गया है। यह शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्थान पा चुका है। इसकी पढ़ाई-लिखाई कर लोग जीविकोपार्जन से जुड़ रहे हैं। गरमियों के दिनों में स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों से लोग पर्वतारोहण के लिए पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा करते हैं। प्राय: पर्वतीय प्रदेश के रहनेवाले ही इसके लिए कोच का काम करते हैं। वे बेहतर तरीके से गाइड कर सकते हैं क्योंकि पर्वतारोहण उनकी दिनचर्या है। पर्वतारोहण के क्षेत्र में बछेंद्री पाल और संतोष यादव का नाम इतिहास में दर्ज हो चुका है।

'आरोहण' कहानी में लेखक ने पर्वतारोहण की ज़रूरत और वर्तमान समय में उसकी उपयोगिता को रेखांकित किया है। पर्वतीय प्रदेश के रहनेवालों के जीवन संघर्ष तथा प्राकृतिक परिवेश से उनके संबंधों को चित्रित किया है। किस तरह पर्वतीय प्रदेशों में प्राकृतिक आपदा, भूस्खलन, पत्थरों के खिसकने से पूरा जीवन तथा समाज नष्ट हो जाता है, आरोहण उसका जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। आरोहण पहाड़ी लोगों की जीवनचर्या का भाग है, किंतु उन्हें आश्चर्य तब होता है जब यह पता चलता है कि वही आरोहण किसी को नौकरी भी दिला सकता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने पर्वतीय प्रदेश की बारीकियों, उनके जीवन के सूक्ष्म अनुभवों, परंपराओं, रीति-रिवाजों, उनके संघर्षों, यातनाओं को संजीदगी के साथ रचा है। मैदानी इलाकों की तुलना में पर्वतीय प्रदेशों की ज़िंदगी कितनी कठिन, जटिल, दुखद और संघर्षमय होती है, उसका विशद विवरण यह कहानी प्रस्तुत करती है।

संजीव की भाषा शैली रोचक है। आंचलिक शब्दों, वाक्यों और पर्वतीय प्रदेश की बोलियों के जो शब्द एवं मुहावरे इस पाठ में आए हैं वे कथानक को बाँधने में सफल हुए हैं। पाठक का ध्यान भी उन्हीं प्रसंगों की ओर बार-बार जाता है, जिनमें लोकभाषा प्रमुख है। कहानी में ये शब्द संरचनात्मक भूमिका में हैं, इनसे कहानी को पढ़ने-समझने में मदद मिलती है।

संजीव

आरोहण

बस उन्हें देवकुंड के स्टॉप पर उतारकर आगे बढ़ गई, तो रूप सिंह की नज़र सबसे पहले अपने गाँव की ओर उठ गई...पूरे ग्यारह साल बाद लौट रहा था वह अपने गाँव माही।

एक अजीब किस्म की लाज, अपनत्व और झिझक उसे घेरने लगी थी। कोई उससे पूछे कि वह इत्ते साल कहाँ रहा या कि इत्ते सालों बाद लौटकर आया ही क्यों, तो वह क्या जवाब देगा! कोई खतों–किताबत भी नहीं। पता नहीं कौन कहाँ हो, कौन कहाँ! ग्यारह साल कम भी तो नहीं होते।

एक दिक्कत और थी। ग्यारह साल बाद भी कोई मुकम्मिल सड़क न बन पाई थी माही के लिए। अकेले जाना होता, तो अपने गाँव के लिए क्या सड़क और क्या पगडंडी! मगर साथ कोई

और हो तो सोचना पड़ता है कि अगला क्या सोचेगा! फिर साथ वाला भी कोई ऐसा-वैसा नहीं, शेखर कपूर था। एक तो उसके गॉड फ़ादर कपूर साहब का लड़का, दूसरे आई.ए.एस. ट्रेनी! अब ऐसे खासमखास मेहमान को पैदल पाँव अपने गाँव लिवा जाना अपनी और अपने गाँव की तौहीन कराना ही तो हुआ न!

शेखर अपने बाइनोक्यूलर से पहाड़ों और घाटियों को देखने में रमा हुआ था, मगर रूप...? आँखें बंद करके भी वह पंद्रह किलोमीटर और ग्यारह साल की दूरी से देख सकता था अपने गाँव को। यह दीगर बात थी कि उसके और माही के बीच अभी कई पहाड़, कई नदियाँ और कई घाटियाँ थीं।

उसने अपने सामने किसी विशाल डायनासॉर की तरह पसरे पहाड़ को देखा। फिर उसके पीछे की ज़र्द परतों को, जिन पर बादल और धुंध की फफूँदियाँ जड़ी हुई थीं। उसके हिसाब से अभी वह छह हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर था और यहाँ से पंद्रह किलोमीटर चलकर दस हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर पहुँचना था उसे। उसने कलाई पर बँधी अपनी इंपोर्टेड घड़ी पर नज़र गड़ाई। अभी सुबह के दस बजे थे। मगर पैदल चलना हो, तो शाम तो होनी ही होनी है।

चाय का गिलास थामते हुए उसने आसपास एक उड़ती-सी नज़र डाली और चायवाले से पूछा, "यहाँ कोई घोड़ा-वोड़ा नहीं मिलता क्या?"

"आप कने जाणा छावाँ (आपको कहाँ जाना है)?"

"माही! सरगी से पहले का गाँव!"

चायवाला अपना सिर खुजलाने लगा। फिर जैसे खुद से दरियाफ़्त करने लगा, "ह्याँ से डाक बँगला और मशरूम सेंटर तक तो जाते हैं, लेकिन माही...!" तभी जैसे कुछ याद आया उसे। उसने आगे बढ़कर गुमसुम-से बैठे नौ-दस साल के एक लड़के को पुकारा, "ओय महीप-ऽ! तूई वकी जाणा छू (तू वहाँ जाएगा)? अरे माही।"

लड़के ने, जो किसी बुज़ुर्ग की तरह पत्थर की सीढ़ियों पर अकेला बैठा हुआ था, अपनी उदासीन-सी गरदन फेरी, मगर कुछ बोला नहीं। उड़े हुए नीले रंग की पहाड़ी पतलून और सलेटी स्वेटर में समेटी अपनी तमाम गंभीरता के बावजूद अपने सुंदर गोरे चेहरे की मासूमियत को अभी झटक नहीं पाया था वह। "ये जा सकेगा भला?" शेखर ने अपना संदेह प्रकट किया। "जाएगा साब! कैसे नहीं जाएगा? यहाँ सवारियाँ मिलतीई कहाँ हैं! आप लोग चले गए, तो बैठ के मक्खीई तो मारणा है। घाट बटी झगड़ा करी के पइसा कमाणा के वास्तेई तो आई छों।"

चायवाले का अनुमान सही था। लड़का वहाँ से चुपचाप उठकर चला गया, मगर थोड़ी ही देर में दो घोड़ों के साथ चढ़ाई चढ़ता हुआ आता दिखा। मेहनताना चायवाले ने ही तय कर दिया था–दो घोड़ों के सौ रुपये।

चल पड़े वे–एक घोड़े पर शेखर, दूसरे पर रूप। महीप शेखर वाले घोड़े के साथ आगे-आगे पैदल चल रहा था। पहले पहाड़ तक रास्ता ठीक-ठाक था, मगर उससे उतरते ही धूप का उजला चंदोव जहाँ-तहाँ दरकने लगा था। धूप की सुनहरी पट्टियों के बीच छाया की स्याह पट्टियाँ, मानो धारीदार खालोंवाला वह विशाल जानवर बैठकर पगुरा रहा था। पता नहीं, कौन किसका पैबंद था, उजाला अँधेरे का या अँधेरा उजाले का?

चढ़ाइयाँ और ढलानें! बीच-बीच में जहाँ-तहाँ उगे छोटे-छोटे घरौंदे, जैसे मशरूम सेंटर के कुकुरमुत्तों की फसल दूर तक छिटक गई हो।

सामने के पहाड़ों पर बादलों के पँख लग गए थे, जो झर-झरकर उनके अगल-बगल उड़ रहे थे। नीचे घास, लताएँ और पेड़ों की कहीं फीकी, तो कहीं चटक हरियाली समेटे पहाड़ कहीं कच्चे, कहीं पक्के! नीचे कोई नदी बह रही थी, शायद सूपिन! शाप की मारी अभागिन सूपिन! घाटी से किसी अदृश्य नारी-कंठ का कोई गीत उमड़ रहा था, पतला दर्दीला सुर–

"ऊँची-नीची डांडियों मा,
हे कुहेड़ी ना लाग तूँ–ऽऽऽ!"

वे पहाड़ के नीचे नदी के बगल के पथरीले रास्ते पर चले जा रहे थे। घोड़ों के खुरों से खट-खट, खर्र-खर्र के अस्फुट ताल के ऊपर फैलता-सा वह गीत, जैसे कोई रंग पसर रहा हो धीरे-धीरे!

"ऊँचे-नीचे पाँखों मा,
हे घसेरी ना जाय तूँ ऽऽऽ?"

गीत जैसे जीवन और मृत्यु, इस लोक और उस लोक से परे किसी अलग ही अमूर्त लोक से उड़ रहा था।

"ऊँची-नीची डांडियों मा
हे हिलांस ना बास तूँ ऽऽऽ!"

"इसका मतलब क्या हुआ यार?" शेखर ने पीछे मुड़कर रूप से सवाल किया।

"मतलब? मतलब...कुहरे से सवाल कर रही है, कोई घास गढ़नेवाली पहाड़ी लड़की कि ए कुहरे, ऊँची-नीची पहाड़ियों में तुम न लगो जाकर। इस पर कुहरा घासवाली लड़की से कहता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में तू न जाया कर। इसी तरह वह हिलांस नाम के परिंदे को भी आगाह करता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में अपना बसेरा न बनाया करे।"

"मगर तेरी आवाज़ भर्रा क्यों गई बताते-बताते?" शेखर ने पीछे मुड़कर ताका।

"यह एक दर्द की टेर है, शेखर साहब...! आपने वो गीत सुना होगा, बहोत पुराना गीत...
छुप गया कोई रे दूर से पुकार के..."

“दर्द अनोखे हाय दे गया प्यार के!” शेखर ने गीत पूरा किया।

“हाँ! वही! ये ठीक है कि मैंने कोई बसेरा नहीं बनाया यहाँ, उड़ गया, मगर बाबा और भूप दादा ने तो...कुहासे का होना क्या मायने रखता है इन पहाड़ों में, इसे तो कोई पहाड़ी ही समझ सकता है। रिश्ते तक धुँधला जाते हैं साहब। नेह के नाते तक नज़र नहीं आते। पास में कोई अपना खड़ा है और उसे आप देख तक नहीं पाते, पहचान तक नहीं पाते।”

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। सिवाय खुरों की आवाज़ों और गीत की धीमी पड़ती लय के, जिसकी हिलकोरों में अग-जग डूब-उतरा रहा था, सारी ध्वनियाँ सो गई थीं।

कुछ देर बाद अचानक चलते-चलते ठमक गया रूप, “यहीं इसी जगह मैंने धकेला था भूप दादा को।”

“धकेला था....? क्यों?” शेखर भी रुक गया।

“वो, मैं भाग गया था घर से देवकुंड। भूप दादा मुझे खोजते हुए आए और मैं पकड़ा गया। कहीं मैं फिर भाग न जाऊँ, सो लौटते वक्त मेरी कलाई पकड़ रखी थी उन्होंने। उनसे छुटकारा पाने को मुझे कुछ न सूझा, तो मैंने धक्का दे दिया उन्हें–यहाँ, इसी जगह! वे सँभल न सके, फिसल गए। मेरा हाथ उनके हाथ में था सो मैं भी खिंच गया। इस ढलान पर हम दोनों ही लुढ़कने लगे। नीचे एक पेड़ था। अब नहीं है, उसने जैसे थाम लिया हम दोनों को। पेड़ के इस तरफ़ भूप, उस तरफ़ मैं, झूलने लगे हम दोनों, बीच में थे हमारे हाथ। बहोऽऽऽत सख्त जान थे भूप दादा। बहोऽऽऽ मज़बूत पकड़ थी उनकी, मगर वे ऊपर से जितनी सख्त जान थे, अंदर से उतने ही नरम। उन्होंने समझा कि वे यूँ ही अपनी गफ़लत से फिसले थे, खुद को कसूरवार भी समझ रहे थे कि अगर उन्होंने मेरा हाथ छोड़ रखा होता, तो शायद मैं गिरने से बच जाता। खैर, जैसे-तैसे हमें खींचकर ऊपर ले आए और हाथ छोड़ दिया।

‘ज्यादा चोट तो नहीं लगी, भुइला?’ उन्होंने अनुतप्त भाव से पूछा। वे खीझभरी हँसी हँस रहे थे और मेरे बदन को परख रहे थे। पत्ते निचोड़कर उन्होंने मेरी और अपनी खरोंचों पर लगाया। ये दाग अभी भी रह गए हैं।” रूप ने बाँहों की ओर इशारा किया, “उन्होंने उस दिन से जो हाथ छोड़ा कि फिर नहीं पकड़ा!”

महीप रुककर उन्हें देखता रहा, मगर उसने घोड़ों को हाँका नहीं। रूप ने खुद ही एड़ लगाई, तो चल पड़ा घोड़ा, “बाप रे, ओह कैसे चढ़ी थी चढ़ाई हमने उस दिन, क्या बताएँ! पूरे आधे घंटे लग गए हमें ऊपर आने में।”

“अगर उस वक्त रॉक क्लाइंबिंग जानते होते, तो इतनी मुश्किल न आती।” बच्चे की तरह बोल उठा था शेखर। “वो सारी ट्रेनिंग तो आपके पापा की मेहरबानी है। मैं आज जितनी ऊँचाई तक जा सका हूँ, उस सबका...मगर उनसे मुलाकात तो इस वाकये के सालभर बाद हुई।”

“अच्छा मान लो, आज तुम्हें इस पर चढ़ना होता, तो कैसे चढ़ते?”

रूप ने एक उस्तादाना उड़ती हुई नज़र से पीछे मुड़कर देखा, फिर कहा, “पहले आप बताइए, देखें कितना जान पाए हैं आप!”

पर्वतारोहण का प्रसंग छिड़ जाने के बाद न रूप को बाकी किसी चीज़ की सुधि रह जाती थी, न शेखर को और यह आरोहण ही दोनों को एक सूत्र में जोड़े हुए था। “मैं...?” शेखर ने नीचे देखे बिना ही ‘ऊँऽऽऽ! ऊँऽऽऽ’ ‘हाँ’ करते हुए प्रशिक्षार्थी की तरह सैद्धांतिक बातों को याद किया, “सबसे पहले तो कोई दरार तलाशते फिर रॉक पिटन लगाते।”

“यहाँ...? खैर, चलिए मान लिया, मगर अगर दरार न मिली, तो...?”

“तो ड्रिल करके लगाएँगे।”

बुज़ुर्ग की तरह मुसकराया रूप, “खैर, आगे?”

“रॉक पिटन, फिर ऐंकर, फिर आगे-आगे डिसेंडर नो नो, रोप लैडर-रस्सी की सीढ़ी।”

“नो!” आधिकारिक भाव से रोक दिया रूप ने, “कोई भी चढ़ाई हो, फ़र्स्ट वॉच, देन गार्डेनिंग-चौरस या समतल बनाना, फिर से देखना होगा कि पत्थर किस जाति का है, इग्नियस है, ग्रेनाइट है, मेटामारफ़िक है, सैंड स्टोन है या सिलिका, क्या है! वरना अव्वल तो सपोर्ट नहीं बना पाओगे, बन भी गया, तो फ्रीरैपेलिंग नहीं होगी।”

शेखर ने रूप की परिपक्व बुद्धि पर प्रशंसा में आँखें नचाईं, “यस, यस।”

दोनों आरोही अति उत्साह में थे। आरोहण के दुस्साहसिक अभियानों पर बहस करते-करते उन्हें इतना भी भान न हुआ कि ढलान से उतरकर कब के वे बीच के मैदान में चले आए थे और अब वह मैदान भी दोनों ओर की पर्वत-शृंखलाओं के कसते चले जाने से संकरा होता चला आ रहा था।

“अब तक आपके सामने ईज़ी सवाल थे, अब कुछ मुश्किल सवाल। इस पहाड़ पर चढ़ना हो और इस पहाड़ से उस पहाड़ पर सीधे ऊपर ही ऊपर जाना हो, खयाल रहे, दोनों के बीच सूपिन है-कैसे करेंगे?” रूप की अँगुली पहाड़ों की ओर उठ रही थी।

“एक मिनट, मुझे उतर जाने दो।” शेखर ने घोड़े से उतरकर पहाड़ों पर गरदन उठाई। एक पिरामिडनुमा था, एक तनिक फ़्लैट, जिसकी शृंखला दूर तक नज़र आ रही थी। दोनों ही पर नीचे से काफ़ी ऊपर तक देवदार खड़े थे। जिन्हें मज़ाक-मज़ाक में वह ‘पहाड़ के रोएँ’ कहा करता था। रूप का इशारा शायद उसके कटे अंश की ओर से चढ़ने का था। लाइम-स्टोन के चक्कर में किसी ने उसके बीच का एक बड़ा भाग कटवा डाला था।

“ये तो लाइम स्टोन है, सीकरी जीन?”

“बस?”

"नहीं ओवर हैंगिंग भी है।"

"हाँ, है, तभी तो टफ़ है, इस पर चढ़कर ऊपर ही ऊपर नदी को क्रॉस करते हुए आपको दूसरे पहाड़ तक जाना है।"

रूप अभी सोच ही रहा था कि महीप ने उकताकर टोक दिया, "साब, जल्दी करो न।"

उन्हें पर्वतारोहण के अध्याय को बंदकर फिर से घोड़े पर सवार होना पड़ा।

नीचे की संकरी नदी से बचते हुए पहाड़ से सटे बेहद संकरे रास्ते से उन्हें चलना पड़ रहा था। शेखर डरकर घोड़े से उतरना चाहता था, मगर महीप ने रोक दिया, "बैठे रहो साब"। अब वह घोड़ों को पुचकारते हुए निर्देश देते हुए चल रहा था, "सँभली के हीरू, सँभली के...ओय वीरू दाएँ चल, दाएँ...अरे ले जाता है नदी मा...दाएँ-दाएँ...सँभली के।" मगर जब सामने भेड़ें आ गईं और भेड़ों के साथ-साथ भोटिया कुत्ता भी, तो उन्हें उतर जाना पड़ा। महीप की चौकन्नी नज़र कुत्ते पर थी, जबकि उन दोनों की कुत्ते के पीछे भेड़ें हाँक रही चौदह-पंद्रह साल की सलोनी लड़की पर।

"अमा रूप!" शेखर ने धीरे से कहा।

"हूँऽऽऽ!"

"पहाड़ की तो एक से बढ़कर एक चढ़ाइयाँ चढ़ी हैं..."

"हाँ"

"कभी प्रेम की भी चढ़ाई चढ़ी कोई?"

"उस उमर में?"

"अरे, कोई तो मिली होगी, जिसे देखकर मन में कुछ-कुछ हुआ होगा कभी?"

"थी तो, मगर उम्र में मुझसे काफ़ी बड़ी।"

"इत्ती...?" शेखर ने लड़की की ओर इशारा किया।

"हाँ!" रूप को मानो रस्सी की सीढ़ी मिल गई, जिससे उम्र के चौबीसवें शिखर से नीचे उतरने लगा वह, "भेड़ें चराने के दौरान ही हमारी मुलाकातें होतीं।"

"इतनी ही हसीन भी थी न?"

"उह! ये क्या है उसके सामने! शैला तो इतनी सुंदर थी कि उसकी गुलामी बजा लाने में ही मैं खुद को धन्य मानता। जबकि वो खुद बैठकर स्वेटर बुना करती, मैं उसकी भेड़ें हाँका करता, उसके लिए बुरूंस के फूल तोड़ लाता, जो उसे बेहद पसंद थे, सेब या आड़ू कहीं मिल गए, तो सबसे पहले उसे लाकर देता।"

"और बदले में वह क्या देती?" शेखर ने ठिठोली की।

"वह...? कभी-कभी देवता का प्रसाद, मक्की की रोटी वगैरह भी। मुझे बाद में मालूम पड़ा कि वह स्वेटर भूप दादा के लिए बुना जा रहा था। फल, फूल और रोटी भी उन्हीं के लिए आती,

वे न आते तो मुझे...! जिस दिन भूप दादा न आते, आखिर तक उसे खुश रखने की मेरी तमाम कोशिशें बेकार चली जातीं।" रूप एक झेंप भरी हँसी हँसकर चुप हो गया।

महीप ने कनखियों से रूप को देखा, फिर घोड़ा पकड़कर चलने लगा।

"तेरी इस लव स्टोरी में तो कोई दम नहीं, कोई और नहीं मिली क्या कभी?" शेखर ने बुरा-सा मुँह बनाया।

"मिली क्यों नहीं, उस दौरान कइयों से साबका पड़ा, कइयों का संग-साथ रहा, अब तो सब ब्याहकर अपने-अपने घर चली गई होंगी, बाल बच्चेदार हो गई होंगी, मगर शैला जैसी एक भी नहीं। एक वही तो थी, जो मुझ पर शासन करती थी। रुकिए, मैं आपको वो जगह दिखाता हूँ, जहाँ...", महीप मुड़कर रूप को देखने लगा, जैसे उसे बातों में रस मिल रहा हो।

अचानक रूप को खटका हुआ, यह कहाँ आ गया वह! यहाँ तो झरने झर रहे हैं, चारागाह का नामोनिशान नहीं। बोला, "ए लड़के, तू हमें कहाँ लिवा जा रहा है?"

"माही", महीप बोला।

"मगर उस रास्ते में पहाड़ों के बगल में एक छोटा सा मैदान हुआ करता था। वहाँ भेड़ें चराने आते थे लोग।"

"पहाड़ के धँस में वो सब कब का दब-ढक गया साब!"

"लो शेखर साहब," पस्त हो गया रूप, "भूप दादा की और मेरी प्रेमिकाएँ, प्यार की निशानियाँ, वो मुकामात सब-के-सब दब-ढक गए भू-स्खलन में! अब तो नए रास्ते हैं और इन्हीं से होकर चलना है।"

"कुछ भी हो, तुम्हारा इलाका है बड़ा खूबसूरत—स्वर्ग जैसा!"

"हाँ, वो क्या कि पांडव इसी रास्ते गए थे स्वर्ग को। इधर का सबसे आखिरी गाँव सुरगी है, सुरगी यानी स्वर्ग। उसके कुछ आगे स्वर्गारोहिणी!"

"जब बरफ़ पड़ती होगी, सारा इलाका बरफ़ से ढक जाता होगा!"

"जभी न लैंड स्लाइड हुआ।"

"वह बात नहीं, मैं तो इस लड़के के रोज़गार के बारे में सोच रहा था। इतनी कच्ची उम्र, उस पर यह घोड़ेवाला धंधा, खतरनाक रास्ते। सोचो, हम जवान होकर भी घोड़े पर जा रहे हैं और यह पंद्रह किलोमीटर पैदल! फिर इसे लौटना भी है पंद्रह किलोमीटर अभी।"

"पेट के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता है!"

"वो तो हई है, वही मैं सोच रहा था कि बरफ़ के दौरान क्या करता होगा यह।"

"येऽऽऽ! हिलांस की तरह जा छुपता होगा अपनी माँ की गोद में," अपनी बात के समर्थन में उसने लड़के को पुकारा, "ओह महीपऽ!"

"जी साब!"

"तेरे पाँव में दर्द होता होगा, आ जा, कुछ देर तू घोड़े पर बैठ जा, हम पैदल चलते हैं।"

"नहीं साब लौटते बखत तो चढ़ के आनाई है।"

"ये हीरू-वीरू का संग-साथ कब से लिया तूने? किस गाँव का है?"

"इससे यह भी तो पूछो कि हीरू-वीरू के अलावा इसके घर परिवार में और कौन-कौन हैं?" शेखर ने कहा।

"साब, बात मत करो, रास्ता भौत ई खराब है।" कहकर महीप ने उनके सवालों पर विराम लगा दिया। ऊपर से पत्थर गिरे हुए थे और वह आगे-आगे घोड़ों को पुचकारते, निर्देश देते चल रहा था, जो उसके लिए इस समय उनके फालतू सवालों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था।

आगे एक झरना था और एक उजड़ी पनचक्की। जगह थोड़ी चौड़ी थी। पानी रास्ते को काटकर बह रहा था। घोड़ों ने मुँह लगा दिया, तो उन्हें उतरना पड़ा। महीप चुपचाप पानी पिलाता रहा हीरू-वीरू को। फिर वह खुद पानी पीने लगा।

"वो भी क्या संयोग था शेखर साहब," रूप जैसे अतीत में लौट आया था, "आपके पापा इधर ट्रेनिंग के लिए न आते, न रास्ता भटकते, न मेरी ज़रूरत होती। मैंने भी न वो चुस्ती दिखाई होती पहाड़ पार करने में, न वो खुश होकर अपने साथ मसूरी लिवा जाते। फिर तो हम कपूर साहब के और मसूरी के ही होकर रह गए साहब। ग्यारह साल बीत गए, तब हम इसी लड़के की तरह हुआ करते थे।"

उसके मन में आया कि कपूर साहब की तरह इस लड़के को भी वापसी में साथ लिवाता जाए, तो कैसा रहे, मगर यह लड़का एक ही घुन्ना है, कुछ बोलता ही नहीं।

"साब, इत्ती-इत्ती देर करोगे, तो हम लौटेंगे कैसे?" महीप ने उन्हें चेताया तो वे एक-एक कर फिर सवार हुए घोड़ों पर।

"मगर इस पहाड़ को हम पार कर पाते, तो दो किलोमीटर की दूरी और कम हो जाती।" रूप ने शेखर से कहा। फिर रूप ने जानना चाहा, "अब तो माही मुश्किल से डेढ़ किलोमीटर होना चाहिए।"

"बस, उस डांडी (पहाड़) के पीछे।"

"तुमने बताया नहीं, तुम क्यों भाग आए थे अपने घर से?" लड़के ने जैसे सुना ही नहीं। वह रास्ते में पड़े एक बड़े पत्थर को हटाने लगा था। पत्थर बड़ा था, लड़के की औकात से ज़्यादा, फिर भी वह पिला पड़ा था। उसकी सहायता के लिए अभी वह नीचे उतरने ही वाला था कि लड़के ने पत्थर को नीचे धकेल दिया। कुढ़ गया रूप, "अजीब होते हैं ये पहाड़ी लोग!" रूप ने कहा, फिर मन ही मन झेंप गया, वह भी तो पहाड़ी ही है।

गाँव करीब आता जा रहा था। वर्षों की बंद स्मृतियों के कपाट खुल रहे थे—एक ओर सूपिन, दूसरी ओर जंगल, पीछे हिमांग का ऊँचा पहाड़, नीचे होंगे अपने खेत, अपना घर, अपने लोग, बाबा,

माँ, भूप दादा और लोग। कितनी दूर है केदार काँठा, कितनी दूर है दुर्योधन जी का मंदिर। ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन...!

बहुत पुराने लोगों में से किसी-किसी ने लाल पलटन के अंग्रेज़ों को देखा था, नयों ने नहीं। सो दो गोरे संभ्रांत अजनबियों के आगमन पर गाँव के कुछ लोग अपने-अपने घरों से निकल आए थे। हालाँकि यह सितंबर का महीना था और दिन के अभी तीन ही बजे थे, मगर यहाँ ठंड काफ़ी थी और लोगों ने ठंड से बचने के लिए 'चुस्ती' या ऊन का 'लावा' पहन रखा था। उनकी आँखों में भय, संशय और कौतूहल थे। रूप की नज़रें इनमें से एक-एक चेहरे को टटोल रही थीं।

लड़का एक सयाने सईस-सा अपनी थकान भूलकर अपने हीरू-वीरू की पीठ, पुट्ठों और टाँगों को थपथपा रहा था। रूप ने सौ का एक नोट निकाला और कुछ सोचकर रख लिया और दस की गड्डी से बारह कड़क नोट निकालकर लड़के को थमाते हुए बोला, "देखो, तुम भी थके हो और तुम्हारे घोड़े भी। फिर बच्चे हो, शाम होनेवाली है, रास्ता खतरनाक है। ऐसा करो, आज रात यहीं रुक जाओ, सुबह चले जाना।"

लड़के ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, तो रूप ने उसे पूरे तौर पर आश्वस्त कर देना चाहा, "यहाँ मेरा घर है, तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी।"

लड़के ने फिर भी कोई जवाब न दिया, बल्कि पीठ फेरकर नोटों को गिनने में मशगूल रहा। उसकी इस धंधेबाज़ अदा पर रूप ने मुसकराकर शेखर की ओर देखा, फिर कदम-कदम चलकर एक बूढ़े के पास पहुँचा। बूढ़ा चकमकाया हुआ-सा अपने पोपले मुँह और झुर्रियों के दल-दल में डूबती आँखों पर हथेलियों से सूरज की ओट बनाकर उसे ही देखे जा रहा था, "कने जाणा छावाँ साब (कहाँ जाना है साब)?" रूप ने बताया, "बाबा, यहाँ ग्यारह साल पहले कोई राम सिंह हुआ करते थे...जिनके भूप सिंह और रूप सिंह दो बेटे थे। वो हिमांग पहाड़ के नीचे उनका घर है।"

बूढ़े के चेहरे पर अपरिचय की शिला हिलकर रह गई, मगर टली नही, तो रूप को जितनी भी गढ़वाली याद रह गई थी, उसे जोड़ने-सजाने लगा, "बाबा, यक भूप सिंह, रूप सिंह दुइ भाई होंदा छै?"

"हाँ," इस बार बूढ़े के होंठ हिले, "लेकिन रूप तो भौत पहली भागी गेई छाइ।"

"अगर मी बोलुलूं कि मी वुई रूप सिंह छौं तो (अगर मैं बोलूँ कि मैं वही रूप सिंह हूँ, तो)?"

"तूऽऽऽ! न आऽऽप! मज़ाक करी छूँ साब?"

"तब तो ई भी मजाक ई छै जो आप दादा तिरलोक सिंह जी छूं?" रूप ने हँसते हुए आगे बढ़कर उनके पाँव छुए। बूढ़ा तिरलोक अभी भी इस आत्मीयता को पूरी तरह से आत्मसात् नहीं कर पा रहा था। किसी दूसरे आदमी ने हिंदी में पूछा, "मगर, आप थे कहाँ इतने दिन?"

"पर्वतारोहण संस्थान।"

"वो क्या चीज च?" तिरलोक ने जानना चाहा।

"पहाड़ पर चढ़ना।"

"के वास्ताँ (किसलिए)?"

गड़बड़ा गया रूप उनकी इस जिरह पर, "बाबा, वो कोई छोटा-मोटा काम नईं। सरकार इसी के लिए चार हज़ार तनखा देती है हमें।"

"ल्या सुण ल्या एकइ बात।" तिरलोक बूढ़े ने सबको सुनाकर कहा, "यह कहता है कि यक रूप सिंह छै! चलो मान लिया, लेकिण फिर बोलूँ छै कि सरकार याको सिर्फ म्याल चढ़न कूँ वास्ते चार हजार तणखा देवे छूँ। यक क्या बात हुई? कैसी अहमक है यक सरकार भी!" शेखर की उपस्थिति में अपनी ऐसी किरकिरी होते देख खिसिया गया रूप।

"आप कभी नीचे नहीं गए न?"

"के वास्ताँ नीचे?"

"तभी!" उसने बुरा-सा मुँह बनाया, "खैर, अभी आज्ञा दें। घर जाऊँ, बाद में मिलते हैं।"

"ग्यार...?

"हाँ, घर।"

"ग्यार तो ऊपर उड़ी के चली गेछू बेटा। वोऽऽऽ उदिर।" तिरलोक सीधे हिमांग पहाड़ पर टाँगना चाह रहे थे अपनी नज़र, मगर बादलों के गाढ़े लिहाफ़ के चलते उसकी शिनाख्त ओझल थी।

"और बाबा और माँ?"

"वो तो और भी ऊपर!" तिरलोक की अँगुली सीधे आसमान की ओर उठी हुई थी, "भौत साल पहले ई।" एकाएक जैसे सफ़ेद हो गया रंगीन स्क्रीन। उदास हो गया रूप। शेखर ने उसके कंधे पर सहानुभूति में हाथ रखा।

कुछ देर बाद रूप भर्राए गले से डरते-डरते पूछने लगा, "भूप दादा तो हैं न?"

"भूप अ? रुको, बुलाते हैं। अरे भूप-अ-अ?" बूढ़े तिरलोक की आवाज़ प्रतिध्वनि बनकर लौटती रही। जवाब में कहीं से कोई आवाज़ नहीं आई। रूप ने डरते-डरते शेखर की ओर देखा। उसे संदेह हो रहा था कि क्या वाकई भूप है या बूढ़ा तिरलोक उनकी आत्मा का आवाहन कर रहा है।

"कितने लोग हैं वहाँ?" शेखर ने पूछा।

एक औरत ने बताया, "अरे वो हैं, उसकी घरवाली, एक लड़का है, लेकिन वो तो..." आगे के शब्द रोक लिए थे उसने जबरन।

"लड़का भी है?"

"लो! अरे वोई लिवा आया न घोड़े पर आपको।" किसी लड़के ने बताया।

"वोऽऽऽ!" रूप ने मुड़कर देखा, महीप वहाँ नहीं था। काफ़ी दूर पर एक घोड़े पर बैठा कोई नन्हा सवार दूसरे को हाँकते हुए ढलान में तेज़ी से उतर रहा था। उनकी आँखों में उसका अक्स छोटा होते-होते पहाड़ की ओट में तिरोहित हो गया, तो शेखर ने कंधे उचकाए, "स्ट्रेंज!"

"भूप तो यक किसी से बात ई नी करता। तू ऐसा कर, शाम होणे वाली है। देर न कर। जा चढ़ जा इस म्याल (पहाड़) पर।"

"इस पर...?" वह कुछ परेशान हुआ।

"क्यों? अभी तो तू कै रहा था कि तूणे बड़े-बड़े पहाड़ चढ़े हैं और सरकार यक काम का वास्ताँ तुझे चार हजार तणखा देती है।"

"वो बात नहीं दादा जी, पहाड़ों पर तो हम पत्तरों, खूँटी, रस्सों, कुल्हाड़ी और दूसरी चीज़ों के सहारे चढ़ते हैं। यहाँ तो साथ लाए नहीं।"

"ओऽऽऽ!" तिरलोक की आँखें झुर्रियों के दलदल से ऊपर उछल आईं, "इत्ता सारा इंतजाम होवे, तब तो तू चढ़ पावे म्याल पर!" तिरलोक हँस पड़े, दूसरे बच्चे, बूढ़े भी। औरतों ने हँसते-हँसते मुँह फेर लिए।

"अरे, वो देख, भूप तो इधर ई आ रहा है।" किसी प्रौढ़ की आवाज़ आई, तो उस दिशा में सबकी नज़र मुड़ गई।

पहली नज़र में वह पूरा का पूरा दिखा नहीं। पाँव किसी डिबके की ओट में थे, सिर किसी डाल की ओट में। सिर्फ़ उसके हाथ और बीच के अंश ही दिख रहे थे। पता नहीं, उसका मायावी कद अंदर ज़मीन में कितनी गहराई तक गया था और आसमानों में ऊपर कितनी ऊँचाई तक!

धीरे-धीरे चलकर वह सामने आया, तो वह कतई असाधारण नहीं लगा। हालाँकि उसकी चुस्ती और स्वेटर-मफ़लर में दरमियाने कद की मामूली-सी शख्सियत के बावजूद उसका तिलिस्म अभी भी बरकरार था।

गोरा-चिट्टा चित्तीदार चेहरा, मानो ग्रेनाइट पत्थर को तराशकर गढ़ा गया सख्त लंबोतरा चेहरा, उसकी अजीब-सी स्थितप्रज्ञ आँखें मद्धिम-मद्धिम जलती हुई, भौंहों पर कटे का निशान, वही है, बिलकुल वही। ग्यारह सालों में और भी ठोस, और भी सख्त हो आए थे भूप दादा।

"दादा!" रूप जा झुका भूप के कदमों पर, "मैं रूप हूँ, तुम्हारा भगेड़ा भाई।"

भाई ने भाई को देखा। जाने क्या-क्या देखा, कहाँ-कहाँ तक देखा, फिर देखते-देखते नज़रों की बरफ़ पिघलने लगी, "कब आया?"

"अभी।"

"अकेले?"

"नहीं, ये मेरे साथ हैं—कपूर साहब, जो मुझे लिवा गए थे, उनके लड़के शेखर साहब आई.ए.एस. की ट्रेनिंग ले रहे हैं मसूरी में।"

शेखर ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। भूप ने कोई उत्तर नहीं दिया। वहाँ तिरलोक दादा जी समेत गाँव के ढेर सारे लोग थे, मगर वह जैसे शिलाओं के बीच खड़े हुए थे, उन्होंने किसी से कोई बात नहीं की, न किसी ने उनसे।

"भुइला (अनुज)! चल ग्यार (घर) चल!" कहकर उन्होंने दोनों के बैग कंधे पर डाल लिए और बिना उनकी सम्मति का इंतज़ार किए, बिना इधर-उधर नज़र डाले वापस मुड़ गए।

शेखर ने धीरे से रूप के कान में कहा, "गोया यह माही हमारा बेस कैंप था और हिमांग हमारा डेस्टीनेशन।" रूप ने होंठों पर अँगुली रखकर उसे चुहल करने से मना किया।

ऊँचे हिमांग की तलहटी में छोटे-से भूखंड पर बसा वह गाँव किसी आदम गाँव-सा लग रहा था। खड्ड, झाड़-झंखाड़, बगल में बहती सूपिन का शोर। बीच-बीच में बादल के टुकड़े आ-जा रहे थे, जिनसे आँख-मिचौली खेलता उनका वजूद फिर से मायावी लगने लगा था। कभी-कभी तो भ्रम होता कि बादल तैर रहे हैं या वे।

चढ़ाई शुरू हो गई थी। प्राय: खड़ी चढ़ाई। पहले तो पेड़ और पत्थरों के सहारे चढ़ते रहे वे, फिर रुक गए। "क्या हुआ? आगे नहीं चढ़ पा रहा है?" भूप ने ऊपर से पूछा, "बस, इत्ता भर पहाड़ीपन बचा रै ग्या ई? है ना!" फिर से नीचे उसके पास आए। उन्होंने गले के मफ़लर की मज़बूती परखी, फिर उसे कमर में बाँधकर दोनों छोरों को दिखाते हुए कहा, "भुला, ले पकड़ इसको।" फिर उन्होंने शेखर की ओर देखा, जो और भी नीचे खड़े हाँफ़ रहा था, "पहले इसे चढ़ा लें, फिर आपको..." शेखर ने हामी भरी।

अब भूप आगे-आगे चढ़ रहे थे, उनकी कमर में बँधे मफ़लर के छोर को पकड़े-पकड़े रूप पीछे-पीछे। बाप रे! बिना किसी आधुनिक उपकरण के, सिर्फ़ पेड़ों-पत्थरों के नाम मात्र के सपोर्ट पर शरीर का संतुलन बनाते हुए चढ़ना। बीच-बीच में रुककर हिदायत भी देते जाते थे, "देख, ए थई मजबूती से पकड़ी के राखी। इन न हवा कि गिर गैल सूपनि मा (देख, इसे मज़बूती से पकड़े रख, ऐसा न हो कि जा गिरे सूपिन में)।"

भूप दादा साँप थे, छिपकली थे, बनमानुष थे या रोबोट थे? वह जिस धैर्य, आत्मविश्वास, ताकत और कुशलता से माँसपेशियों और अंगों का नायाब उपयोग कर रहे थे, वह उसके लिए हैरत की चीज़ थी। फिर अकेले का भार मात्र होता, तो भी एक बात होती। वह तो खुद के साथ-साथ उसे भी खींचे लिए जा रहे थे। बारह वर्ष पहले ठीक इसी तरह ढलान के ऊपर ले आए थे उसे। घंटेभर लगे ऊपर पहुँचने में। उन्होंने वहीं से किसी को आवाज़ दी, शायद उन लोगों के आने की सूचना।

फिर जवाब की प्रतीक्षा किए बगैर उसे हाँफ़ता हुआ छोड़कर शेखर को ले आने के लिए नीचे उतरने लगे। देखते ही देखते हिमांग पर छाए बादलों में अदृश्य हो गए वो।

ऊपर रूप ने देखा कि पहाड़ की पीठ पर कुछ दूर तक ज़मीन प्राय: समतल बनी हुई थी, जिसमें मकई की फसल खड़ी हुई थी। क्षेत्र के चारों ओर सेब और देवदार के पेड़ थे। सेब के पेड़ों में तो फल भी लगे हुए थे। पेड़ ज़्यादा दिनों के नहीं थे, यह देखने से ही लग रहा था। उसने गौर किया, ऐसे ही पेड़ नीचे भी कुछ दूर तक फैलते चले गए थे। पूरे क्षेत्र की परिक्रमा करता हुआ वह आधी दूरी तक पहुँचा होगा कि उसे एक गुफानुमा आश्रम दिखा। उसी के बगल में दो छानी (छप्पर का झोंपड़ा) भी। यही घर है शायद! एक छप्पर के नीचे एक औरत खड़ी थी, नाटी गोरी जवान चुस्त और लाल फ़ुल स्वेटर में। वह उसे हैरानी से घूर रही थी। उसने अनुमान लगाया कि यह भाभी हो सकती है, मगर झिझकवश आगे बढ़ गया। आगे हिमांग के ऊपरवाले अंश से कोई झरना झर रहा था, जो खेतों से गुज़रते हुए सूपिन में गिरता था।

हवा में बरफ़ीली शाम की ठंडक बढ़ गई और देखते-देखते कोहरा इतना घना हो गया कि लगता था, पृथ्वी पर पहाड़ की इस पीठ को छोड़कर बाकी कुछ भी नहीं, कहीं भी नहीं।

शेखर को लेकर आ गए थे भूप। आते ही उन्होंने भाभी-देवर के बीच संवादहीनता की जड़ता को ताड़ लिया और बोले, "रूपऽ! तेरी बाभी (भाभी)।"

रूप ने आगे बढ़कर उस औरत के पाँव छुए। बूँदा-बाँदी शुरू हो गई थी। पति-पत्नी गृहस्थी के सामान को समेटने में लग गए। रूप और शेखर गुफा में बिछे पटरों पर ही लेट गए।

"रूप," शेखर ने पुकारा।

"ऊँऽऽऽ"

"यार, इट वॉज़ ए रेयर एक्सपीरिएंस।"

"हाँ!"

"वो महीप घोड़ेवाला लड़का तेरी इन्हीं भाभी श्री का लड़का है?"

"बताया तो यही गया।"

"उहूँऽऽ, मुझे लगता है, कहीं कोई गड़बड़ है।"

"हूँऽऽऽ," नींद की झील में डूब गया रूप का जवाब। जाने कब तक सोते रहे वे। रात के किसी पहर जगाया था भूप ने, "लो, यकी खा लो, यकी पड़े रहो, भौत ज़ोरों की बारिश है बाहर!" सचमुच, बाहर वर्षा कहर ढा रही थी।

सुबह उठे, तो आसमान साफ़ था। पूरब की दो पहाड़ियों के बीच, धुंध के परदे के पीछे से किसी बच्चे की तरह झाँक रहा था लाल-लाल सूरज। धुंध अरुणाभ हो रही थी। धीरे-धीरे छँटी थी कुछ धुंध! नीचे झाँकने पर माही के छोटे-छोटे घरौंदे अजीब-से लग रहे थे, भूरे पानी के गहरे तल में पड़ी मछलियों, सीप, घोंघे की तरह हलका सा आभास मात्र हो रहा था इन सबका।

"भाई से मिलकर कैसा लगा, रूप?" शेखर ने एकांत में पूछा।

"भाई...? बस, थोड़ी-सी ही धुंध छँटी है अभी।"

"हूँ कहते हैं, लिओनार्दो द विंची ने पहाड़ को देखकर कहा था कि मेरी मोनालिसा यहाँ है, मगर इसे पाने के लिए मुझे ढेरों पत्थर-मिट्टी के मलबे हटाने हैं। तुम्हारा भाई भी इस पहाड़ में है, मोनालिसा नहीं, साक्षात् शिव, मगर उस तक पहुँचने के लिए ढेरों मलबा हटाना पड़ेगा तुम्हें अभी।"

रूप कुछ बोला नहीं, चुपचाप टहलता रहा।

नाश्ते पर पहली बार सब साथ बैठे, आग के गिर्द। भुनी हुई मक्के की बाल और चाय। भाभी सेंक-सेंककर दिए जा रही थी। वे नमक-मिर्च के साथ चबाते जा रहे थे।

"यहाँ इस पहाड़ पर कैसे आना पड़ा दादा?" मलबा हटाने की रूप की एक अदद कोशिश।

"यहाँ...?" भूप ने मक्के से हाथ को गरम करते हुए जैसे पीछे दूर तक देखा, "आज इतणे वर्षों बाद यही पूछणे के लिए आया है?"

"मुझे और शर्मिंदा न करें।"

"तो सुण भुइला, तूने सिर पर पहाड़ टूटने की कहावत तो भौत सुणी होगी, सुणने में भौत भारी नहीं लगती, लेकिन इसकी सच्चाई तो वोई जाणे है, जिस पर सचमुच का पहाड़ टूटा हो।" भाभी और भुने हुए भुट्टे दे रही थीं। उन्होंने मना कर दिया, "तेरे जाणे के बाद अगले साल भौत बरफ गिरी। ये हिमांग पहाड़ उसका बोझ न उठा सका, धसक गया और अपने तीस नाली खेत, मकान, माँ, बाबा, सब दब गए मलबे में। मैं ही किसी तरह बच गया, छानी पर था, इसलिए वहीं से तबाही देखी थी मैंणे लाचार, असहाय। तू होता, तो पहाड़ का मलबा क्या था, पहाड़ तक हटा लेते दोनों भाई, खेत भी खींचकर निकाल लेते, माँ-बाबा को भी, लेकिन नहीं हो सका, वही पहाड़ कबर बन गया सबका।" भूप थोड़ी देर के लिए चुप हो गए।

"तू तो पैले ही भाग चुका था मुझे अकेला छोड़कर। फिर मैं भौत भटका, भौत छटपटाया, लेकिन कहीं सहारा न मिला। सहारा देता भी कौण? सबी अपणे-अपणे से-ई तबाह। दस-दस किलोमीटर तक जगह-जगह धँसाव हुए थे। रास्ते बदल गए, नदियाँ बदल गईं। इतनी बड़ी तबाही हो चुकी थी और मैं खिसियाई आँखों से इस हिमांग को देखा करता, मौत की तरह फैला हुआ म्याल!"

भाभी चाय दे गई थीं। दूध के अभाव में लाल चाय। भूप ने पहले गिलास की चाय में भाप से अपनी पनियाई आँखों को सेंका, फिर गिलास को दोनों हाथों में दबा लिया। पता नहीं, किस आत्मीय ऊष्मा की तलाश थी उन्हें। वे हैरान हो उनकी इस विचित्र लीला को देख रहे थे।

"तुझे बचपण में बाबा की सुनाई गई कहानी याद है?" वे रूप की ओर मुखातिब हुए, तो उनकी आँखें कुछ ज्यादा ही चटक हो आई थीं, "वो एक नन्ही चिड़ियावाली, जिसे गीध ने कहा था, 'मैं तुझे खा जाऊँगा' नहीं? खैर, मैं याद दिलाता हूँ। गीध के ऐसा कहने पर चिड़िया डर गई। पूछा,

'क्यों?', गीध बोला, 'इसलिए कि तू मुझसे ऊँचा नहीं उड़ सकती।' यह अजीब जबरदस्ती का तर्क था। नन्ही चिड़िया ने धीरज धरकर पूछा, 'और अगर मैं तुझसे ऊँचा उड़कर दिखा दूँ, तो?' गीध उसके बचकाणेपन पर हँसा, 'तो नहीं खाऊँगा'। फिर तो दोणों में ठण गया मुकाबला। गीध के सामने भला उस नन्ही चिड़िया की क्या बिसात! लंबे-लंबे डैने फहराए और उड़ गया ऊपर, ऊपर और-और ऊपर। चिड़िया डर गई। फिर भी उसने धीरज न छोड़ा। ऐसे भी मरणा है, वैसे भी, तो क्यों न मौत से दो-दो हाथ करके-ई मरूँ। कम-से-कम मरणे का मलाल तो नहीं रहेगा। फिर तो पूरी ताकत लगा दी उसने उड़ने में, लगा कि पराण ही निकल जावेंगे। जाण पे खेल गई चिड़िया और सारी ताकत लगाकर उड़कर जा बैठी गीध की पीठ पर। गीध अपणी बेहिसाब ताकत के गुरूर में उड़ता रहा, आकाश से भी ऊँचा, लेकिन चिड़िया को अब कोई डर न था। वह हर हाल में उससे ऊँचाई पर थी, मौत की पीठ पर ही जा बैठी थी जो।"

कहानी खत्म कर अपने सामने के मंज़र को देखने लगे भूप। उन्होंने बीड़ी सुलगा ली। दो-एक कश खींचे, फिर बोले, "तो भुइला, इसी तरह मैं भी आ बैठा मौत की इस पीठ पर, उसी की, जिसने मेरा सब कुछ निगल लिया था। धीरे-धीरे मलबा हटाता रहा यहाँ का। थोड़ी-बहुत खेती शुरू करी। अकेला-अकेला लगा, तो एक औरत ले आया नीचे से।"

"कौन, शैला...?" रूप चौकन्ना हो उठा सहसा।

"हाँ, अभी तक तुझे याद है?" इस बार भूप के चौंकने की बारी थी। एक क्षण को वह तराशा हुआ चित्तीदार चेहरा स्निग्ध होता-सा लगा। फिर उस पर एक नामालूम-सी धुंध छा गई। "शैला के आने से खेती फैल गई। बरफ जमी न रहे, सो हमने खेतों को ढलवाँ बणाया, मगर एक मुसीबत, पाणी कहाँ से आए! एक दिन पाणी की खोज में हम चढ़ गए इस हिमांग के साबुत ऊँचे हिस्से पर। वहाँ हमने देखा कि एक झरणा यूँ ही उस तरफ सूपिन में गिर रहा था। उसे मोड़ लेने से पाणी की समस्या हल हो सकती थी, मगर बीच में ऊँचा था याणी के पहाड़ काटणा था। हमने क्वार के दिन चुने, जब रातों को बरफ जमने लगती थी, दिन को पिघलने लगती थी, मगर थोड़ी-थोड़ी। याणी इतना भी नहीं कि धार तेज हो, इतना भी नहीं की बरफ जमकर सख्त हो जाए। बड़ी मेहनत की हम दोणों ने, मगर झरने को मोड़कर लाने में सफल हो ही गए आखिर।"

"जाड़े में तो जम जाता होगा, फिर बरफ़ से ढक जाता होगा यह सब?" शेखर ने पूछा।

"अभी ई जम गया जी।" भूप ने कहा, "लेकिण गरमी पाएगा, तो पिघल जाएगा।"

"ये पेड़ लगा रखे हैं न। काफी लकड़ी जमा कर लेते हैं। चौबीसों घंटे आग जलती रहती है। बरफ से आग को भिड़ा देते हैं।"

"मगर भाभी गई कहाँ, मेरा मतलब शैला भाभी..."

"वो ई तो बता रहा था कि तेरी बाभी के आणे से खेती का काम कैसे बढ़ता गया। काम हम दोनों के बूते का न था। फिर उसको बच्चा भी होनेवाला था, तो हम ले आए दूसरी औरत...ए तेरी

दूसरी बाभी। शैला से एक बेटा हुआ महीप। फिर एक दिन, महीप अभी नौ साल का ई था कि उसकी माँ को जाणे क्या सूझा कि एक दिन हयांई से कूद गई सूपिण माँ।"

स्तब्ध रह गए रूप और शेखर। सिर्फ़ झरने के गिरने के शोर को छोड़कर कोई आवाज़ नहीं थी कहीं। एक गहरी साँस लेकर बोले भूप, "तब से...बेटा जो नीचे उतरा, तो फिर ऊपर नहीं आया, मैंने लाख मणाया, फिर भी...कल भी उसे आया देखकर ई नीचे उतरा था। उसके पीछे-पीछे दूर तक गया, मगर। उसने सुणकर भी नहीं सुणा, देखकर भी नहीं देखा, लौट गया घोड़ी को भगाते हुए। मुझी को गुनाहगार समझता है अपनी माँ की मौत के लिए।"

"चाह!" भूप की दूसरी पत्नी ने शायद विषयांतर करना चाहा।

"अरे, रहणे दे। ये साहब लोग हुए न, काली चाह नहीं पसंद करते।"

"आप एक भेड़ या बकरी तो रख ही सकते थे, उन्हें चढ़ने-चढ़ाने में मुश्किल भी नहीं आती, दूध भी मिल जाता।"

"पाली थी न।"

"दिख तो नहीं रही।"

धुंध काफ़ी कुछ छँट चुकी थी...।

अब समझ में आया कि भूप दादा ने कल क्यों बात नहीं की माहीवालों से। रात की बारिश से भीगी सलेटी मिट्टी पर सुबह की आलोक-छाया में चलते हुए नीचे पसरी घाटी को दूर-दूर तक देख रहे थे वे। उनके पीछे हिमांग का बाकी साबुत पहाड़ था, जिससे नीचे उतरता झरना हिमायित होकर चाँदी की राह-सा चमक रहा था। इतनी ऊँचाई पर और इतनी ठंड में उसका जम जाना लाज़िमी था। वे हिम के पिघलने का इंतज़ार कर रहे थे और रूप और शेखर उनके अंदर के हिम के पिघलने का इंतज़ार। आखिर दोनों ही पिघले।

"तू गया। तेरे पीछे माँ गई। बाबा गए। फिर शैला गई। सबसे आखिर में महीप भी चला गया हमें छोड़कर।" वे रुक-रुककर बोलते हैं, "तू कहेगा, चढ़ सिर्फ मैं रहा था, बाकी उतर रहे थे; मैं कहता नहीं, अपणे-अपणे हिस्से की चढ़ाई तो सभी चढ़ रहे थे। चढ़ने का सबका अपणा-अपणा तरीका है।"

थोड़ी देर तक हिम के पिघलने को वे यूँ ही देखते रहे। फिर फावड़ा उठाकर किनारे के कटाव को ठीक करने चल पड़े। इस समय वे अकेले थे। उनका यह रूप उन दोनों में दहशत भी भर रहा था, सम्मोहित भी कर रहा था।

"उफ़! कितने अकेले लग रहे हैं भूप दादा इस वक्त!" रूप ने धीरे से कहा।

"ऊँचाइयाँ तनहा भी तो करती हैं," शेखर ने कहा।

कटाव की मरम्मत कर आग के पास फिर लौट आए थे भूप।

"भूप सिंह, एक बात पूछूँ?" शेखर ने उन्हें देखते हुए कहा।

"पूछो।"

"आप पहाड़ हैं या पहाड़ पर चढ़नेवाले?"

"हम...? आपको क्या लगता है?"

"दोनों ही।"

हँस पड़े भूप। शायद पहली बार! बोले, "हम कहाँ के पहाड़ हुए भुला, हम तो चढ़नेवाले ई हुए।"

"दादा!" रूप का गला भर आया, "बहोत दुख झेले आपने, बहोऽऽत। दुखों का पहाड़ लेकर चढ़ते रहे पहाड़ पर। अब बस करो। मैं तुम्हारा छोटा भाई तुम्हें अपने साथ लिवा जाना चाहता हूँ। मुझे सरकार की ओर से पक्का क्वार्टर मिला हुआ है। जितनी तनख्वाह मिलती है, उसमें आराम से रह लेंगे हम सभी।"

भूप गंभीर हो गए। न 'हाँ' कहा, न 'ना'।

"एक बार चलकर देख तो आइए कि आपका भुइला कैसे रहता है।"

भूप फिर भी निर्विकार बने रहे, तो शेखर ने कहा, "भूप भैया, मेरे पापा कहा करते थे कि क्लाइंबर, माने चढ़नेवाले को अपनी सारी ताकत एक ही चढ़ाई में खत्म नहीं कर देनी चाहिए, कुछ ताकत बचा के रखनी चाहिए, आनेवाली चढ़ाइयों के लिए भी..."

"आई.एस. साहब, वो आपके बाबा का तरीका होगा, शौकिया चढ़नेवालों का तरीका। मेरे बाबा का तरीका तो वोई है–गीध और नन्हीं चिड़ियावाला, जहाँ जिंदगी और मौत में जंग छिड़ी हो, वहाँ...", बैलों की डकार में अधूरा रह गया वाक्य।

"ओह, इन बंदों को तो मैं भूल ई गया आज," भूप को जैसे उनकी सुधि अब आई हो, फिर ज़ोर से बोले, "सुण लिया, सुण लिया।"

रूप और शेखर ने एक-दूसरे की ओर हैरान होनेवाली नज़रों से देखा, "तो बैल भी हैं यहाँ! मगर ये आए कैसे?"

बैलों को बाहर धूप में निकालकर बाँधा भूप ने। छोटे नाटे, पर पुष्ट बैल। उनकी पत्नी ने भोजन बनाना छोड़कर हाथ में घास लाकर डाल दिया उनके सामने।

"भूप भैया, ये बैल कैसे आए यहाँ?" शेखर ने पूछा।

"कैसे आए...? आप ई बताओ जी। सुना, बड़ा 'मैंड' (माइंड) रखते हैं आई.एस. वाले।"

शेखर कुछ इस कदर पराभूत था कि भकुआ गया।

"अजी, कंधे पर ढो के ले आए इन्हें, और कैसे!" भूप ने कहा।

"कंधे पर?..इन्हें?"

"क्यों? मैं अपनी दो औरतों को कंधे पर लाद के ला सकता हूँ, आप दोणों को ला सकता हूँ, इन्हें नी ला सकता? अजी देखो, इत्ते बड़े बैल तो चढ़ नी सकते न! सो नीचे से एक छोटा बछड़ा ले आए पहले, फिर दूसरा। फिर वे हयांई पलकर बैल बने।"

"लेकिन ये नीचे कैसे उतरेंगे?"

भूप ने कोई जवाब न दिया। हँसुए से मकई की डंठलों को काटते रहे।

"ये पहाड़ कभी भी धँस सकता है।"

"मालूम है।" उनका यह छोटा सा वाक्य बेहद ठंडा था। बहुत देर तक मंडराता रहा उसका आतंक।

"यह तो सरासर खुदकशी है।"

"तुम कैते हो, खुदकशी है, मैं कैता बचने का मुकाम।"

"दादा, इन्हें देखकर आपका अकेलापन और गहरा गया हमारे सामने। आप समझते क्यों नहीं कि आपने औरों से खुद को काट लिया है।" रूप की आवाज़ भर्रा रही थी।

"मैंने...? ना! पिछले साल गरमियों में नीचे आग लगी। इसी झरने को मोड़कर बुझाई थी हमने आग। अभी कल ही नीचे नहीं गया था?"

"मगर आपने किसी से बात तो नहीं की न?"

"नी की। दु:ख था, लेकिन देवता जानते हैं, जो कभी उनका बुरा सोचा हो मण में। ह्याँ, जहाँ हूँ, बुरा सोचूँगा भी कैसे? मुझे तो सबी पर दया आती है ह्याँ से नीचे देखणे पर।"

"मगर यहाँ आप अकेले हैं।"

"कौण कैता है, अकेला हूँ? ह्याँ माँ है, बाबा हैं, शैला है—सोये पड़े हैं सब। ह्याँ महीप है, बल्द हैं, मेरी घरवाली है, मौत के मुँह से निकाले गए खेत हैं, पेड़ हैं, झरणा है। इन पहाड़ों में मेरे पुरखों, मेरे प्यारों की आत्मा भटकती रहती है। मैं उनसे बात करता हूँ।"

"दादा! ये सब देख-देखकर, सुन-सुनकर मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। अभी से भी बची-खुची ज़िंदगी के साथ इंसाफ़ किया जा सकता है।"

भूप ने अपनी भीगी पलकें ऊपर उठाईं, तो वे अंदर जल रही थीं, "भौत इंसाफ किया तुम सबी ने मेरे साथ-भौत। अब माफ करो भुइला। मेरी खुद्दारी को बखस दो। अब तो जिंदा रहणे तक न ई बल्द उतर सकदिन, न हम!"

प्रश्न-अभ्यास

1. यूँ तो प्राय: लोग घर छोड़कर कहीं न कहीं जाते हैं, परदेश जाते हैं किंतु घर लौटते समय रूप सिंह को एक अजीब किस्म की लाज, अपनत्व और झिझक क्यों घेरने लगी?
2. पत्थर की जाति से लेखक का क्या आशय है? उसके विभिन्न प्रकारों के बारे में लिखिए।
3. महीप अपने विषय में बात पूछे जाने पर उसे टाल क्यों देता था?
4. बूढ़े तिरलोक सिंह को पहाड़ पर चढ़ना जैसी नौकरी की बात सुनकर अजीब क्यों लगा?
5. रूप सिंह पहाड़ पर चढ़ना सीखने के बावजूद भूप सिंह के सामने बौना क्यों पड़ गया था?
6. शैला और भूप ने मिलकर किस तरह पहाड़ पर अपनी मेहनत से नयी ज़िंदगी की कहानी लिखी?
7. सैलानी (शेखर और रूप सिंह) घोड़े पर चलते हुए उस लड़के के रोज़गार के बारे में सोच रहे थे जिसने उनको घोड़े पर सवार कर रखा था और स्वयं पैदल चल रहा था। क्या आप भी बाल मज़दूरों के बारे में सोचते हैं?
8. पहाड़ों की चढ़ाई में भूप दादा का कोई जवाब नहीं! उनके चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
9. इस कहानी को पढ़कर आपके मन में पहाड़ों पर स्त्री की स्थिति की क्या छवि बनती है? उस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. 'पहाड़ों में जीवन अत्यंत कठिन होता है।' पाठ के आधार पर उक्त विषय पर एक निबंध लिखिए।
2. पर्वतारोहण की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
3. पर्वतारोहण पर्वतीय प्रदेशों की दिनचर्या है, वही दिनचर्या आज जीविका का माध्यम बन गई है। उसके गुण-दोष का विवेचन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

खतो-किताबत	-	पत्र-व्यवहार
मुकम्मिल	-	स्थायी
खासमखास	-	अतिविशिष्ट, अंतरंग
तौहीन	-	बेइज़्ज़ती
ज़र्द	-	पीला पड़ना

इंपोर्टेड	–	आयातित
दरियाफ़्त	–	जानकारी प्राप्त करना, पता लगाना
ह्याँ	–	यहाँ
घाट बटी	–	पहाड़ के पार जाने का रास्ता
चंदोव	–	शामियाना, चादर
दरकना	–	फटना
पगुराना	–	जुगाली करना
पैबंद	–	थेगली
सूपिन	–	नदी का नाम
अस्फुट	–	अस्पष्ट
कुहेड़ी	–	कुहरा
घसेरी	–	घासवाली
डांडियाँ	–	पहाड़ियाँ
हिलांस	–	एक पक्षी का नाम
ना बास	–	न बसना
गफ़लत	–	गलतफ़हमी, असावधानी
अनुतप्त	–	पछतावे से भरी
रॉक पिटन	–	चट्टान में गड्ढा करना
ड्रिल	–	खोदना
लैंड स्लाइड	–	भू-स्खलन
संभ्रांत	–	कुलीन, खानदानी, रईस
मशगूल	–	व्यस्त, लगा हुआ
शिनाख्त	–	पहचान
शख्सियत	–	व्यक्तित्व
तिलस्म	–	जादू
वजूद	–	अस्तित्व
हिलकोरे	–	स्वर लहरी

पाठ परिचय

3

बिस्कोहर की माटी

*प्रस्तुत पाठ **बिस्कोहर की माटी** विश्वनाथ त्रिपाठी की आत्मकथा **नंगातलाई का गाँव** का एक अंश है। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह पाठ अपनी अभिव्यंजना में अत्यंत रोचक और पठनीय है। लेखक ने उम्र के कई पड़ाव पार करने के बाद अपने जीवन में माँ, गाँव और आसपास के प्राकृतिक परिवेश का वर्णन करते हुए ग्रामीण जीवन शैली, लोक कथाओं, लोक मान्यताओं को पाठक तक पहुँचाने की कोशिश की है।*

गाँव, शहर की तरह सुविधायुक्त नहीं होते, बल्कि प्रकृति पर अधिक निर्भर रहते हैं। इस निर्भरता का दूसरा पक्ष प्राकृतिक सौंदर्य भी है जिसे लेखक ने बड़े मनोयोग से जिया और प्रस्तुत किया है। एक तरफ़ प्राकृतिक संपदा के रूप में अकाल के वक्त खाई जाने वाली कमल ककड़ी का वर्णन है तो दूसरी ओर प्राकृतिक विपदा बाढ़ से बदहाल गाँव की तकलीफ़ों का ज़िक्र है। कमल, कोइयाँ, हरसिंगार के साथ-साथ तोरी, लौकी, भिंडी, भटकटैया, इमली, कदंब आदि के फूलों का वर्णन कर लेखक ने ग्रामीण प्राकृतिक सुषमा और संपदा को दिखाया है तो डोड़हा, मजगिदवा, धामिन, गोंहुअन, घोर कड़ाइच आदि साँपों, बिच्छुओं आदि के वर्णन द्वारा भयमिश्रित वातावरण का भी निर्माण किया है। ग्रामीण जीवन में शहरी दवाइयों की जगह प्रकृति से प्राप्त फूल, पत्तियों के प्रयोग भी आम हैं जिसे लेखक ने रेखांकित किया है।

पूरी कथा के केंद्र में है बिस्कोहर जो लेखक का गाँव है और एक पात्र 'बिसनाथ' जो लेखक स्वयं (विश्वनाथ) है। गरमी, वर्षा और शरद ऋतु में गाँव में होने वाली दिक्कतों का भी लेखक के मन पर प्रभाव पड़ा है जिसका उल्लेख इस रचना में भी दिखाई पड़ता है। दस वर्ष की उम्र में करीब दस वर्ष बड़ी स्त्री को देखकर मन में उठे-बसे भावों, संवेगों के अमिट प्रभाव व उसकी मार्मिक प्रस्तुति के बीच संवादों की यथावत् आंचलिक प्रस्तुति अनुभव की सत्यता और नैसर्गिकता की द्योतक है। पूरी रचना में लेखक ने अपने देखे-भोगे यथार्थ को प्राकृतिक सौंदर्य के साथ प्रस्तुत किया है। लेखक की शैली अपने आप में अनूठी और बिलकुल नयी है।

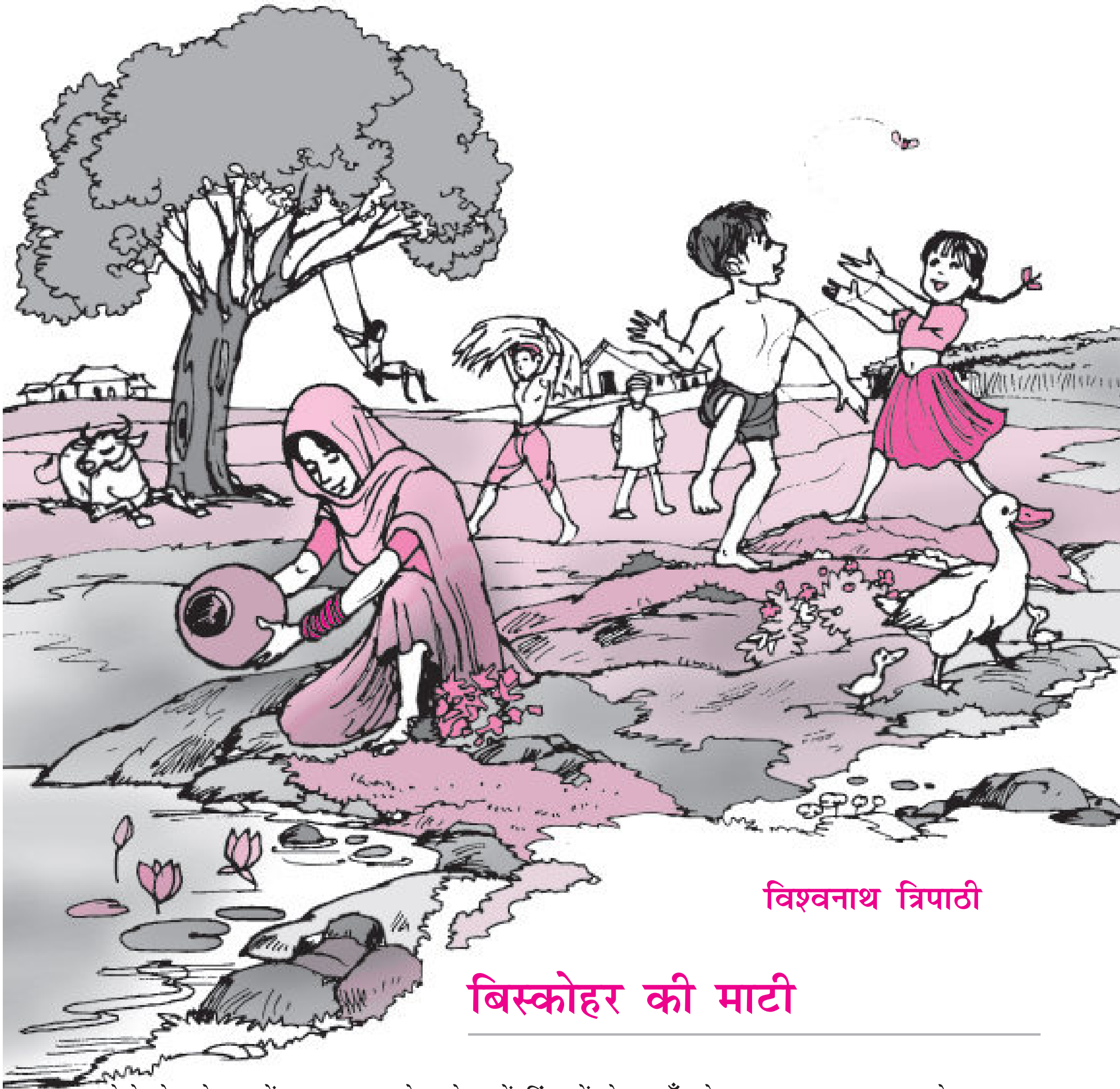

विश्वनाथ त्रिपाठी

बिस्कोहर की माटी

पूरब टोले के पोखर में कमल फूलते। भोज में हिंदुओं के यहाँ भोजन कमल-पत्र पर परोसा जाता। कमल-पत्र को पुरइन कहते। कमल के नाल को भसीण कहते। आसपास कोई बड़ा कमल-तालाब था—लेंवडी का ताल। अकाल पड़ने पर लोग उसमें से भसीण (कमल-ककड़ी) खोदकर बड़े-बड़े खाँचों में सर पर लादकर खाने के लिए ले जाते। कमल-ककड़ी को सामान्यत: अभी भी गाँव में नहीं खाया जाता। कमल का बीज कमल गट्टा ज़रूर खाया जाता है। कमल से कहीं ज़्यादा बहार

कोइयाँ की थी। कोइयाँ वही जलपुष्प है जिसे कुमुद कहते हैं। इसे कोका-बेली भी कहते हैं। शरद में जहाँ भी गड्ढा और उसमें पानी होता है, कोइयाँ फूल उठती हैं। रेलवे-लाइन के दोनों ओर प्राय: गड्ढों में पानी भरा रहता है। आप उत्तर भारत में इसे प्राय: सर्वत्र पाएँगे। बिसनाथ बहुत दिनों समझते थे कि कोइयाँ सिर्फ़ हमारे यहाँ का फूल है। एक बार वैष्णो देवी दर्शनार्थ गए। देखा यह पंजाब में भी रेलवे-लाइन के दोनों तरफ़ खिला था—अनवरत, निरंतर। शरद की चाँदनी में सरोवरों में चाँदनी का प्रतिबिंब और खिली हुई कोइयाँ की पत्तियाँ एक हो जाती हैं। इसकी गंध को जो पसंद करता है वही जानता है कि वह क्या है! इन्हीं दिनों तालाबों में सिंघाड़ा आता है। सिंघाड़े के भी फूल होते हैं—उजले और उनमें गंध भी होती है। बिसनाथ को सिंघाड़े के फूलों से भरे हुए तालाब से गंध के साथ एक हलकी सी आवाज़ भी सुनाई देती थी। वे घूम-घूमकर तालाबों से आती हुई वह गंधमिश्रित आवाज़ सुनते। सिंघाड़ा जब बतिया (छोटा) दूधिया होता है तब उसमें वह गंध भी होती है।

और शरद में ही हरसिंगार फूलता है। पितर-पक्ख (पितृपक्ष) में मालिन दाई घर के दरवाज़े पर हरसिंगार की राशि रख जाती थीं। रख जाती थीं, तो खड़ी बोली हुई। गाँव की बोली में 'कुरइ जात रहीं।' बहुत ढेर सारे फूल मानो इकट्ठे ही अनायास उनसे गिर पड़ते थे। 'कुरइ देना' है तो सकर्मक लेकिन सहजता अकर्मक की है। गाँव में ज्ञात-अज्ञात वनस्पतियों, जल के विविध रूपों और मिट्टी के अनेक वर्णों-आकारों का एक ऐसा समस्त वातावरण था जो सजीव था। बिसनाथ आदि बच्चे उसे छूते, पहचानते, उससे बतियाते थे। सभी चीज़ें प्रत्येक चीज़ में थीं और प्रत्येक सबमें। आकाश भी अपने गाँव का ही एक टोला लगता। चंदा मामा थे। उसमें एक बुढ़िया थी। जो बच्चों की दादी की सहेली थी। माँ आँचल में छिपाकर दूध पिलाती थी। बच्चे का माँ का दूध पीना सिर्फ़ दूध पीना नहीं माँ से बच्चे के सारे संबंधों का जीवन-चरित होता है। बच्चा सुबुकता है, रोता है, माँ को मारता है, माँ भी कभी-कभी मारती है, बच्चा चिपटा रहता है, माँ चिपटाए रहती है, बच्चा माँ के पेट का स्पर्श, गंध भोगता रहता है, पेट में अपनी जगह जैसे ढूँढ़ता रहता है। बिसनाथ ने एक बार ज़ोर से काट लिया। माँ ने ज़ोर से थप्पड़ मारा फिर पास में बैठी नाउन से कहा—दाँत निकाले है, टीसत है। बच्चे दाँत निकालते हैं तब हर चीज़ को दाँत से यों ही काटते हैं, वही टीसना है। चाँदनी रात में खटिया पर लेटी माँ बच्चे को दूध पिला रही है। बच्चा दूध ही नहीं, चाँदनी भी पी रहा है, चाँदनी भी माँ जैसी ही पुलक-स्नेह-ममता दे रही है। माँ के अंक से लिपटकर माँ का दूध पीना, जड़ के चेतन होने यानी मानव-जन्म लेने की सार्थकता है। पशु-माताएँ भी यह सुख देती-पाती होंगी। और पक्षी-अंडज!

यह बिसनाथ ने बहुत बाद में देखा-समझा। दिलशाद गार्डन के डियर पार्क में तब बत्तखें होती थीं। बत्तख अंडा देने को होती तो पानी छोड़कर ज़मीन पर आ जाती। इसके लिए एक सुरक्षित काँटेदार बाड़ा था। देखा—एक बत्तख कई अंडों को से रही है। पंख फुलाए उन्हें छिपाए है—दुनिया से बचाए है। एक कौवा थोड़ी दूर ताक में। बत्तख की चोंच सख्त होती है। अंडों की खोल नाज़ुक।

कुछ अंडे बत्तख-माँ के डैनों से बाहर छिटक जाते। बत्तख उन्हें चोंच से इतनी सतर्कता, कोमलता से डैनों के अंदर फिर छुपा लेती थी कि बस आप देखते रहिए, कुछ कह नहीं सकते–इसे 'सेस, सारद' भी नहीं बयान कर सकते। और माँ की निगाह कौवे की ताक पर भी थी। कभी-कभी वह अंडों को बड़ी सतर्कता से उलटती-पलटती भी।

किसने दी बिसनाथ की माँ और बत्तख की माँ को इतनी ममता? जैसे पानी बहता है, हवा चलती है, वैसे ही माँ में बच्चे की ममता-प्रकृति में ही सब कुछ है। जड़ चेतन में रूपांतरित होकर क्या-क्या अंतरबाह्य गढ़ता है, लीलाचारी होता है! गुरुवर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी प्राय: कहते हैं–

"क्या यह सब बिना किसी प्रयोजन के है? बिना किसी उद्देश्य के है?"

होगा कोई महान निहित उद्देश्य, प्रयोजन! लेकिन अभी तो 'बुश-ब्लेयर' ने इराक फतह किया है। कहाँ माँ का बच्चे को दूध पिलाना कहाँ बत्तख का अंडा सेना!

बिसनाथ पर अत्याचार हो गया। जब वह दूध पीनेवाले ही थे कि छोटा भाई आ गया। बिसनाथ दूध कटहा हो गए। उनका दूध कट गया। माँ के दूध पर छोटे भाई का कब्ज़ा हो गया। छोटा भाई हुमक-हुमककर अम्माँ का दूध पीता और बिसनाथ गाय का बेस्वाद दूध। कसेरिन दाई पड़ोस में रहती थीं। बिसनाथ को उन्होंने ही पाला-पोसा। सूई की डोरी से बनी हुई कथरी सुजनी कहलाती है। साफ़-सफ़्फ़ाक सुजनी पर कसेरिन दाई के साथ लेटे तीन बरस के बिसनाथ चाँद को देखते रहते। लगता है उसे हाथ से छू रहे हैं, उसे खा रहे हैं, उससे बातें कर रहे हैं। वह धुक-धुक करके चलता रहता। बादल में छिप जाता, फिर उसमें से निकल आता। इमली के छतनार पेड़ के अंतरालों से छनकर चाँदनी के कितने टुकड़े बिखरते। शीशम की फुनगी को चाँदनी कैसे चूमती!

फूलों की बात हो रही थी–कमल, कोइयाँ, हरसिंगार की। लेकिन ये तो फूल हैं और फूल कहे जाते हैं। ऐसे कितने फूल थे जिनकी चर्चा फूलों के रूप में नहीं होती, और हैं वे असली फूल–तोरी, लौकी, भिंडी, भटकटैया, इमली, अमरूद, कदंब, बैंगन, कोंहड़ा (काशीफल), शरीफ़ा, आम के बौर, कटहल, बेल (बेला, चमेली, जूहीवाला बेला नहीं), अरहर, उड़द, चना, मसूर, मटर के फूल, सेमल के फूल। कदम (कदंब) के फूलों से पेड़ लदबदा जाता। कृष्ण जी उसी पर झूलते थे–'झूला पड़ा कदम की डाली,' 'नंदक नंद कदंबक तरुतर'। क्या कदंब और भी देशों में होता है? मुझे तो लगता है कदंब का दुनियाभर में एक ही पेड़ है–बिस्कोहर के पच्छूँ टोला में ताल के पास। सरसों के फूल का पीला सागर लहराता हुआ। खेतों में तेल–तेल की गंध, जैसे हवा उसमें अनेक रूपों में तैर रही हो। सरसों के अनवरत फूल-खेत सौंदर्य को कितना पावन बना देते हैं। बिसनाथ के गाँव में एक फल और बहुत इफ़रात होता था–उसे भरभंडा कहते थे, उसे ही शायद सत्यानाशी कहते हैं। नाम चाहे जैसा हो सुंदरता में उसका कोई जवाब नहीं। फूल पीली तितली जैसा, आँखें आने पर माँ उसका दूध आँख में लगातीं और दूबों के अनेक वर्णी छोटे-छोटे फूल–बचपन में इन सबको

चखा है, सूँघा है, कानों में खोसा है। और देखिए–धान, गेहूँ, जौ के भी फूल होते हैं–ज़ीरे की शक्ल में–भुट्टे का फूल, धान के खेत और भुट्टे की गंध जो नहीं जानता उसे क्या कौन समझाए!

फूल खिले, खिले फूल
धान फूल, कोदो फूल
कुटकी फूल खिले।
फूल खिले, खिले फूल
गोभी फूल, परवल फूल
करेला, लौकी, खेक्सा
मिर्ची फूल खिले।
फूल खिले, खिले फूल
खीरा फूल, तोरई फूल
महुआ फूल खिले।
ऐसी हो बारिश
खूब फूल खिलें।

– नवल शुक्ल

घास पात से भरे मेड़ों पर, मैदानों में, तालाब के भीटों पर नाना प्रकार के साँप मिलते थे। साँप से डर तो लगता था लेकिन वे प्रायः मिलते-दिखते थे। डोंड़हा और मजगिदवा विषहीन थे। डोंड़हा को मारा नहीं जाता। उसे साँपों में वामन जाति का मानते थे। धामिन भी विषहीन है लेकिन वह लंबी होती है, मुँह से कुश पकड़कर पूँछ से मार दे तो अंग सड़ जाए। सबसे खतरनाक गोंहुअन जिसे हमारे गाँव में 'फेंटारा' कहते थे और उतना ही खतरनाक 'घोर कड़ाइच' जिसके काट लेने पर आदमी घोड़े की तरह हिनहिनाकर मरे। फिर भटिहा–जिसके दो मुँह होते हैं। आम, पीपल, केवड़े की झाड़ी में रहनेवाले साँप बहुत खतरनाक।

अजीब बात है साँपों से भय भी लगता था और हर जगह अवचेतन में डर से ही सही उनकी प्रतीक्षा भी करते थे। छोटे-छोटे पौधों के बीच में सरसराते हुए साँप को देखना भी भयानक रस हो सकता है। इसी तरह बिच्छू! साँप के काटे लोग बहुत कम बचते थे। बिच्छू काटने से दर्द बहुत होता था, कोई मरता नहीं था। फूलों की गंधों से साँप, महामारी, देवी, चुड़ैल आदि का संबंध जोड़ा जाता था। गुड़हल का फूल देवी का फूल था। नीम के फूल और पत्ते चेचक में रोगी के पास रख दिए जाते। फूल बेर के भी होते हैं और उनकी गंध वन्य, मादक होती है। बसंत में फूल आते हैं। बेर का फूल सूँघकर बर्रे ततैया का डंक झड़ जाता है। तब उन्हें हाथ से पकड़ लेते, उन्हें जेब में भर लेते। उनकी कमर में धागा बाँधकर लड़ाते।

खूब गरमी चिलचिलाती पड़ती। घर में सबको सोता पाकर चुपके से निकल जाते, दुपहरिया का नाच देखते। गरमी में कभी-कभी लू लगने की घटनाएँ सुनाई पड़तीं। माँ लू से बचने के लिए धोती या कमीज़ से गाँठ लगाकर प्याज़ बाँध देतीं। लू लगने की दवा थी कच्चे आम का पन्ना। भूनकर गुड़ या चीनी में उसका शरबत पीना, देह में लेपना, नहाना। कच्चे आम को भून या उबालकर उससे सिर धोते थे। कच्चे आमों के झौंर के झौंर पेड़ पर लगे देखना, कच्चे आम की हरी गंध, पकने से पहले ही जामुन खाना, तोड़ना–यह गरमी की बहार थी। कटहल गरमी का फल और तरकारी भी है।

वर्षा ऐसे सीधे एकाएक नहीं आती थी। पहले बादल घिरते–गड़गड़ाहट होती। पूरा आकाश बादलों से ऐसा घिर जाता कि दिन में रात हो जाती। 'चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, घन घमंड गरजत घन घोरा और कंपित-जगम-नीड़ बिहंगम।' वर्षा ऐसी ऋतु है जिसमें संगीत सबसे ज़्यादा होता है, तबला, मृदंग और सितार का। जोश ने लिखा है–'बजा रहा है सितार पानी' और वर्षा ऐसे नहीं–आती हुई दिखलाई पड़ती थी। मेरे घर की छत से–जैसे घोड़ों की कतार दूर से दौड़ी हुई चली आ रही हो–और पास, और पास अब नदी पर बरसा, अब डेगहर पर, अब बड़की बगिया पर, अब पड़ोस घर में टप टप टप, आँधी चले तो टीन छप्पर उड़े। कई दिन लगातार बरसे तो दीवार गिरे, घर धँसके–बढ़िया आवे। भीषण गरमी के बाद बरसात में पुलकित कुत्ते, बकरी, मुर्गी-मुर्गे–भौं भौं, में में, चूँ चूँ करते मगन बेमतलब इधर-उधर भागें, थिरकें। पहली वर्षा में नहाने से दाद-खाज, फोड़ा-फुँसी ठीक हो जाते हैं–लेकिन मछलियाँ कभी-कभी उबस के माँजा (फेन) लगने से भी मर जाती हैं–राजा दशरथ राम के बिरह में ऐसे व्याकुल 'माँजा मनहु मीन कहँ व्यापा।' जोंक, केंचुआ, ग्वालिन-जुगनू, अगनिहवा, बोका, करकच्ची, गोंजर आदि, मच्छर, डाँसा आदि कीड़े-मकोड़ों की बहुतायत–भूमि जीव संकुल रहे, किंतु नाना प्रकार के दूबों, वनस्पतियों की नव-हरित आभा की लहरों का क्या कहना–धोए-धोए पातन की बात ही निराली है!

फिर गंदगी कीचड़, बदबू की लदर-पदर। बाढ़ आवे, सिवान-खेत-खलिहान पानी से भर जाए तो दिसा-मैदान की भारी तकलीफ़। जलावन की लकड़ी पहले न इकट्ठा कर ली तो गीली लकड़ी, गीले कंडे से घर धुएँ से भर जाए। बरसात के बाद बिस्कोहर की धरती, सिवान, आकाश, दिशाएँ, तालाब, बूढ़ी राप्ती नदी निखर उठते थे। धान के पौधे झूमने लगते थे, भुट्टे, चरी, सनई के पौधे, करेले, खीरे, कांकर, भिंडी, तोरी के पौधे, फिर लताएँ। शरद में फूल-तालाब में शैवाल (सेवार) उसमें नीला जल–आकाश का प्रतिबिंब–नीले जल के कारण तालाब का जल अगाध लगता। स्नान करने से आत्मीय शीतलता और विशुद्धता की अनुभूति–तालाबों का नीला प्रसन्न जल–बिसनाथ को लगता अभी इसमें से कोई देवी-देवता प्रकट होगा। खेतों में पानी देने के लिए छोटी-छोटी नालियाँ बनाई जातीं, उसे 'बरहा' कहते थे, उसमें से जल सुरीला शब्द करता हुआ, शाही शान से बहता जैसे चाँदी की धारा रेंग रही हो, उस पर सूर्य की किरणें पड़तीं।

जाड़े की धूप और चैत की चाँदनी में ज़्यादा फ़र्क नहीं होता। बरसात की भीगी चाँदनी चमकती तो नहीं लेकिन मधुर और शोभा के भार से दबी ज़्यादा होती है। वैसे ही बिस्कोहर की वह औरत।

पहली बार उसे बढ़नी में एक रिश्तेदार के यहाँ देखा। बिसनाथ की उमर उससे काफ़ी कम है—ताज्जुब नहीं दस बरस कम हो, बिसनाथ दस से ज़्यादा के नहीं थे। देखा तो लगा चाँदनी रात में, बरसात की चाँदनी रात में जूही की खुशबू आ रही है। बिस्कोहर में उन दिनों बिसनाथ संतोषी भइया के घर बहुत जाते थे। उनके आँगन में जूही लगी थी। उसकी खुशबू प्राणों में बसी रहती थी। यों भी चाँदनी में सफ़ेद फूल ऐसे लगते हैं मानो पेड़ों, लताओं पर चाँदनी ही फूल के रूप में दिखाई पड़ रही हो। चाँदनी भी प्रकृति, फूल भी प्रकृति और खुशबू भी प्रकृति। वह औरत बिसनाथ को औरत के रूप में नहीं, जूही की लता बन गई चाँदनी के रूप में लगी, जिसके फूलों की खुशबू आ रही थी। प्रकृति सजीव नारी बन गई थी और बिसनाथ उसमें आकाश, चाँदनी, सुगंधि सब देख रहे थे। वह बहुत दूर की चीज़ इतने नज़दीक आ गई थी। सौंदर्य क्या होता है, तदाकार परिणति क्या होती है? जीवन की सार्थकता क्या होती है; यह सब बाद में सुना, समझा, सीखा सब उसी के संदर्भ में। वह नारी मिली भी—बिसनाथ आजीवन उससे शरमाते रहे। उसकी शादी बिस्कोहर में ही हुई। कई बार मिलने के बाद बहुत हिम्मत बाँधने के बाद उस नारी से अपनी भावना व्यक्त करने के लिए कहा, "जे तुम्हैं पाइ जाइ ते जरूरै बौराय जाइ"—जो तुम्हें पा जाएगा वह ज़रूर ही पागल हो जाएगा।

"जाइ देव बिसनाथ बाबू, उनसे तौ हमार कब्बों ठीक से भेंटौ नाहीं भई।"

बिसनाथ मान ही नहीं सकते कि बिस्कोहर से अच्छा कोई गाँव हो सकता है और बिस्कोहर से ज़्यादा सुंदर कहीं की औरत हो सकती है।

बिसनाथ को अपनी माँ के पेट का रंग हल्दी मिलाकर बनाई गई पूड़ी का रंग लगता—गंध दूध की। पिता के कुर्ते को ज़रूर सूँघते। उसमें पसीने की बू बहुत अच्छी लगती। नारी शरीर से उन्हें बिस्कोहर की ही फसलों, वनस्पतियों की उत्कट गंध आती है। तालाब की चिकनी मिट्टी की गंध गेहूँ, भुट्टा, खीरा की गंध या पुआल की होती है...। फूले हुए नीम की गंध को नारी-शरीर या शृंगार से कभी नहीं जोड़ सकते। वह गंध मादक, गंभीर और असीमित की ओर ले जानेवाली होती है। संगीत, गंध, बच्चे—बिसनाथ के लिए सबसे बड़े सेतु हैं काल, इतिहास को पार करने के। बड़े गुलाम अली खाँ साहब ने एक पहाड़ी ठुमरी गाई है—अब तो आओ साजन—सुनें अकेले में या याद करें इस ठुमरी को तो रुलाई आती है और वही औरत इसमें व्याकुल नज़र आती है। अप्राप्ति की कितनी और कैसी प्राप्तियाँ होती हैं! वह सफ़ेद रंग की साड़ी पहने रहती है। घने काले केश सँवारे हुए हैं। आँखों में पता नहीं कैसी आर्द्र व्यथा है। वह सिर्फ़ इंतज़ार करती है। संगीत, नृत्य, मूर्ति, कविता, स्थापत्य, चित्र गरज कि हर कला रूप के आस्वाद में वह मौजूद है। बिसनाथ के लिए हर दुःख-सुख से जोड़ने की सेतु है।

इस स्मृति के साथ मृत्यु का बोध अजीब तौर पर जुड़ा हुआ है।

❐ *'नंगातलाई का गाँव' आत्मकथा का अंश*

प्रश्न-अभ्यास

1. कोइयाँ किसे कहते हैं? उसकी विशेषताएँ बताइए।
2. 'बच्चे का माँ का दूध पीना सिर्फ़ दूध पीना नहीं, माँ से बच्चे के सारे संबंधों का जीवन-चरित होता है'–टिप्पणी कीजिए।
3. बिसनाथ पर क्या अत्याचार हो गया?
4. गरमी और लू से बचने के उपायों का विवरण दीजिए। क्या आप भी उन उपायों से परिचित हैं?
5. लेखक बिसनाथ ने किन आधारों पर अपनी माँ की तुलना बत्तख से की है?
6. बिस्कोहर में हुई बरसात का जो वर्णन बिसनाथ ने किया है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
7. 'फूल केवल गंध ही नहीं देते दवा भी करते हैं', कैसे?
8. 'प्रकृति सजीव नारी बन गई'–इस कथन के संदर्भ में लेखक की प्रकृति, नारी और सौंदर्य संबंधी मान्यताएँ स्पष्ट कीजिए।
9. ऐसी कौन सी स्मृति है जिसके साथ लेखक को मृत्यु का बोध अजीब तौर से जुड़ा मिलता है?

योग्यता-विस्तार

1. पाठ में आए फूलों के नाम, साँपों के नाम छाँटिए और उनके रूप, रंग, विशेषताओं के बारे में लिखिए।
2. इस पाठ से गाँव के बारे में आपको क्या-क्या जानकारियाँ मिलीं? लिखिए।
3. वर्तमान समय-समाज में माताएँ नवजात शिशु को दूध नहीं पिलाना चाहतीं। आपके विचार से माँ और बच्चे पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है?

शब्दार्थ और टिप्पणी

भसीण	–	कमलनाल, कमल का तना
कुमुद	–	जलपुष्प, कुइयाँ, कोकाबेली
सिंघाड़ा	–	जलफल, काँटेदार फल जो पानी में होता है
बतिया	–	फल का अविकसित रूप
प्रयोजन	–	उद्देश्य
कथरी	–	बिछौना
साफ़-सफ्फ़ाक	–	साफ़ और स्वच्छ
इफ़रात	–	अधिकता
भीटों	–	टीले, ढूह

बरहा	–	खेतों की सिंचाई के लिए बनाई गई नाली
सुबुकना	–	धीमे स्वर में रोना
आँख आना	–	गरमियों के मौसम में आँख का रोग होना
थिरकना	–	नाचना
अगाध	–	भरपूर
आर्द्र	–	नमी

4

अपना मालवा

खाऊ-उजाड़ू सभ्यता में

प्रभाष जोशी का ***अपना मालवा–खाऊ-उजाड़ू सभ्यता में*** *पाठ* **जनसत्ता**, *1 अक्टूबर 2006 के* **कागद कारे** *स्तंभ से लिया गया है। इस पाठ में लेखक ने मालवा प्रदेश की मिट्टी, वर्षा, नदियों की स्थिति, उद्गम एवं विस्तार तथा वहाँ के जनजीवन एवं संस्कृति को चित्रित किया है। पहले के मालवा 'मालव धरती गहन गंभीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर' की अब के मालवा 'नदी नाले सूख गए, पग-पग नीर वाला मालवा सूखा हो गया' से तुलना की है। जो मालवा अपनी सुख-समृद्धि एवं संपन्नता के लिए विख्यात था वही अब खाऊ-उजाड़ू सभ्यता में फँसकर उलझ गया है। यह खाऊ-उजाड़ू सभ्यता यूरोप और अमेरिका की देन है जिसके कारण विकास की औद्योगिक सभ्यता उजाड़ की अपसभ्यता बन गई है। इससे पूरी दुनिया प्रभावित हुई है, पर्यावरण बिगड़ा है।*

लेखक की पर्यावरण संबंधी चिंता सिर्फ़ मालवा तक सीमित न होकर सार्वभौमिक हो गई है। अमेरिका की खाऊ-उजाड़ू जीवन पद्धति ने दुनिया को इतना प्रभावित किया है कि हम अपनी जीवन पद्धति, संस्कृति, सभ्यता तथा अपनी धरती को उजाड़ने में लगे हुए हैं। इस बहाने लेखक ने खाऊ-उजाड़ू जीवन पद्धति के द्वारा पर्यावरणीय विनाश की पूरी तसवीर खींची है जिससे मालवा भी नहीं बच सका है। आधुनिक औद्योगिक विकास ने हमें अपनी जड़-ज़मीन से अलग कर दिया है। सही मायनों में हम उजड़ रहे हैं। इस पाठ के माध्यम से लेखक ने पर्यावरणीय सरोकारों को आम जनता से जोड़ दिया है तथा पर्यावरण के प्रति लोगों को सचेत किया है।

प्रभाष जोशी

अपना मालवा

खाऊ-उजाड़ू सभ्यता में

उगते सूरज की निथरी कोमल धूप राजस्थान में रह गई। मालवा लगा तो आसमान बादलों से छाया हुआ था। काले भूरे बादल। थोड़ी देर में लगने लगा कि चौमासा अभी गया नहीं है। जहाँ–जहाँ भी पानी भरा हुआ रह सकता था लबालब भरा हुआ था, मटमैला बरसाती पानी। जितने भी छोटे–मोटे नदी–नाले दिख रहे थे, सब बह रहे थे। इससे ज़्यादा पानी अब यह धरती सोख के रख नहीं सकती थी। ऊपर से बादल कि कभी भी बरस सकते थे।

नवरात्रि की पहली सुबह थी। मालवा में घट-स्थापना की तैयारी। गोबर से घर-आँगन लीपने और मानाजी के ओटले को रंगोली से सजाने की सुबह। बहू-बेटियों के नहाने-धोने और सजकर त्योहार मनाने में लगने की घड़ी। लेकिन आसमान तो घऊँ-घऊँ कर रहा था। रास्ते में छोटे स्टेशनों पर महिलाओं की ही भीड़ थी। मैं, उजली-चटक धूप, लहलहाती ज्वार-बाजरे और सोयाबीन की फसलें, पीले फूलोंवाली फैलती बेलें और दमकते घर-आँगन देखने आया था। लेकिन लग रहा था कि पानी तो गिर के रहेगा। ऐसा नहीं कि नवरात्रि में पानी गिरते न देखा हो। क्वांर मालवा में मानसून के जाने का महीना होता है। कभी थोड़ा पहले भी चला जाता है। इस बार तो जाते हुए भी जमे रहने की धौंस दे रहा है।

नागदा स्टेशन पर मीणा जी बिना चीनी की चाय पिलाते हैं। सारे ज़रूरी समाचार भी देते हैं। गई रात क्वालालंपुर में भारत के हारने से दुःखी थे। पूछने पर ही मौसम और खेती पर आए, "हाँ, अबकी पानी भोत गिर्‌यो। किसान कै कि हमारी सोयाबीन की फसल तो गली गई। पण अब गेहूँ-चना अच्छा होयगा।" सार में उनने कहा और दुकान में लग गए। चाय और भजिया उनने अच्छा बनवा के दिया था। हम मियाँ-बीवी मज़े में खाते-पीते उज्जैन पहुँच गए। रास्ते में शिप्रा मिली। मैया ऐसी भरपूर और बहती हुई तो बरसों में दिखी थी। गए महीने टीवी पर लाइन पढ़ी थी कि उज्जैन में शिप्रा का पानी घरों में घुस गया। भोपाल, इंदौर, धार, देवास सब में झड़ी लगी थी। सब जगह फ़ोन लगा के पूछा था। खतरा कहीं न था, लेकिन सब को पुराने दिन याद आ गए थे।

अब मालवा में वैसा पानी नहीं गिरता जैसा गिरा करता था। इसलिए पहले का औसत पानी भी गिरे तो लोगों को लगता है कि ज़्यादा गिर गया। इस बार भी बरसात वही चालीस इंच गिरी है। कहीं ज़्यादा है कहीं थोड़ी कम। लेकिन लोग टीवी की समझ में अत्ति की बोलने लगे हैं। उज्जैन से देवास होते हुए इंदौर जाना मालवा के आँगन में से निकलना है। क्वांर की धूप होती तो भरी-पूरी गदराई हरियाली से तबीयत झक हो जाती, लेकिन कुएँ-बावड़ी और तालाब-तलैया के लबालब भरे, नदी-नालों को बहते और फसलों को लहराते देखो तो क्या गज़ब की विपुलता की आश्वस्ति मिलती है! खूब मनाओ दसेरा-दिवाली। अबकी मालवो खूब पाक्यो हे।

इंदौर उतरते ही गाड़ी में सामान रखते दव्वा को कहा कि अपने को सब नदियाँ, सारे तालाब, सारे ताल-तलैया और जलाशय देखने हैं। सब पहाड़ चढ़ने हैं।

उसने मुसकुराते हुए कहा–यहीं से?

नी यार पेले माता बिठायंगा।

माता तो बैठ गई, आरती भी हो गई ताऊजी, एक बजनेवाला है।

बाद में पाया कि उमर भी अब सत्तर की हो जाएगी। पहाड़ चढ़े नहीं जाएँगे। नदी-नाले पार नहीं होंगे। सूखती सुनहरी घास बुलाएगी लेकिन उस पर लेटकर रड़का नहीं जा सकेगा। मन से तो

किशोर हो सकते हो। शरीर फिर वैसा फुर्तीला, लचीला और गर्वीला नहीं हो सकता। उमर जो ले गई उसे ले जाने दो। उसका जो है, रखे। अपना जो है उसे जिएँ।

इस त्रासदायी प्रतीति के बावजूद दो जगहों से नर्मदा देखी। ओंकारेश्वर में उस पार से। सामने सीमेंट कंक्रीट का विशाल राक्षसी बाँध उस पर बनाया जा रहा है। शायद इसीलिए वह चिढ़ती और तिनतिन-फिनफिन करती बह रही थी। मटमैली, कहीं छिछली अपने तल के पत्थर दिखाती, कहीं गहरी अथाह। वे बड़ी-बड़ी नावें वहाँ नहीं थीं। शायद पूर में बहने से बचाकर कहीं रख दी गई थीं। किनारों पर टूटे पत्थर पड़े थे। ज्योतिर्लिंग का तीर्थ धाम वह नहीं लग रहा था। निर्माण में लगी बड़ी-बड़ी मशीनें और गुर्राते ट्रक थे। वहीं थोड़ी देर क्वांर की चिलचिलाती धूप मिली, लेकिन नर्मदा के बार-बार पूर आने के निशान चारों तरफ़ थे। बावजूद इतने बाँधों के नर्मदा में अब भी खूब पानी और गति है।

नेमावर के पास बजवाड़ा में नर्मदा शांत, गंभीर और भरी-पूरी थी। शाम हो जाने पर भी जैसे अपने अंदर के मंदे उजाले से गमक रही थी। चवथ का चाँद उस पर लटका हुआ था। मिट्टी की ऊँची कगार पर पेड़ों के बीच बैठे हुए हम चुपचाप उसे प्रणाम कर रहे थे। भेन जी ने जैसे उसे सहलाते हुए कहा—थक गई है। देखना अब रात को बहेगी।

रातभर हम उसके किनारे ही सोए। सबेरे उठकर फिर जैसे उसके नमन में उसके किनारे बैठे। अब वह शांत बह रही थी। अपन घाट नीचे नर्मदा किनारे के लोग। भेन जी गंगा किनारे की। हम नदी को नदी नहीं माँ मानते हैं। नर्मदा मैया है। उससे हम बने हैं। उसके किनारे बैठना माँ की गोद में डूबना है।

ओंकारेश्वर और नेमावर जाते हुए दोनों बार विंध्य के घाट उतरने पड़े। एक तरफ़ सिमरोल का घाट, दूसरी तरफ़ बिजवाड़। दोनों में सागौन के जंगल। पत्ते खाँखरे होते हुए, फिर भी फुनगियों पर फूल के झल्ले। सिमरोल के बीच से चोरल खूब बहती हुई मिली। बिजवाड़ में हर नाला बह रहा था। हर पहाड़ी नदी की रपट पर पानी था। बचपन में पितृपक्ष और नवरात्रि पर ऐसा ही पानी मिलता था। सारे नदी, नाले ऐसे ही कलमल करते जीवित हो उठते थे। पहाड़ों के सीने में कितने स्रोत हैं। सब बहें तो नीचे की काली मिट्टी खूब उमगकर फल-फूल और अन्न देती है। नेमावर के रास्ते पर ही केवड़ेश्वर है जहाँ से शिप्रा निकलती है। कालिदास की शिप्रा। बहुत बड़ी नदी नहीं है। लेकिन उज्जैन में महाकाल के पाँव पखारे तो पवित्र हो गई। चंबल विंध्य के जानापाव पर्वत से निकली और निमाड़, मालवा, बुंदेलखंड, ग्वालियर होती हुई इटावा के पास जमना में मिली।

चंबल को हमने घाटा बिलोद में देखा। काफ़ी पानी था। खूब बह रही थी। उसमें नहाते लड़के को गर्व था कि यहाँ छोटी दिखती हो तो क्या! हमारी चंबल से गंगा ही बस बड़ी है। आगे बहुत बड़ा बाँध है। खूब पानी है। इस बार गाँधी सागर के सब फाटक खोलने पड़े। इत्ता पानी भरा। गंभीर इतनी बड़ी नहीं है। लेकिन हालोद के आगे यशवंत सागर को इस बार फिर उसने इतना भर दिया

कि पच्चीसों साइफ़न चलाने पड़े। सड़सठ साल में तीसरी बार ऐसा हुआ। पार्वती और कालीसिंध ने फिर रास्ता रोका। दो दिन उनके पुल पर से पानी बहता रहा। इस बार मालवा के पठार की सब नदियों में पूर आई। उसके पास से बहनेवाली नर्मदा में भी खूब पानी आया। बरसों बाद हज़ारों साल की कहावत सच्ची हुई—मालव धरती गहन गंभीर, डग-डग रोटी, पग-पग नीर। दक्षिण से उत्तर की ओर ढलानवाले इस पठार की सभी नदियों के दर्शन हुए। खूब पानी, खूब बहाव और खूब कृपा। नदी का सदानीरा रहना जीवन के स्रोत का सदा जीवित रहना है।

नदियों के बाद नंबर था तालाबों का। हमारे आज के इंजीनियर समझते हैं कि वे पानी का प्रबंध जानते हैं और पहले ज़माने के लोग कुछ नहीं जानते थे क्योंकि ज्ञान तो पश्चिम के रिनेसां के बाद ही आया न! मालवा में विक्रमादित्य और भोज और मुंज रिनेसां के बहुत पहले हो गए। वे और मालवा के सब राजा जानते थे कि इस पठार पर पानी को रोक के रखना होगा। सबने तालाब बनवाए, बड़ी-बड़ी बावड़ियाँ बनवाईं ताकि बरसात का पानी रुका रहे और धरती के गर्भ के पानी को जीवंत रख सकें। हमारे आज के नियोजकों और इंजीनियरों ने तालाबों को गाद से भर जाने दिया और ज़मीन के पानी को पाताल से भी निकाल लिया। नदी-नाले सूख गए। पग-पग नीरवाला मालवा सूखा हो गया। लेकिन इस बार बिलावली भर गया है। पीपल्या पाला भर गया है। सिरपुर में लबालब पानी है और यशवंत सागर के सभी साइफ़न तो चले ही थे, फिर भी इंदौर की खान और सरस्वती नदियों में उतना पानी नहीं है जितने में कभी मैं नहाया हूँ और नाव पर सैर की है।

हाथीपाला का नाम इसलिए है कि कभी वहाँ की नदी को पार करने के लिए हाथी पर बैठना पड़ता था। चंद्रभागा पुल के नीचे उतना पानी रहा करता था जितना महाराष्ट्र की चंद्रभागा नदी में। इंदौर के बीच से निकलने और मिलनेवाली ये नदियाँ कभी उसे हरा-भरा और गुलज़ार रखती थीं। आज वे सड़े नालों में बदल दी गई हैं। शिप्रा, चंबल, गंभीर, पार्वती, कालीसिंध, चोरल सबके यही हाल हो रहे हैं। ये सदानीरा नदियाँ अब मालवा के गालों के आँसू भी नहीं बहा सकतीं। चौमासे में चलती हैं। बाकी के महीनों में बस्तियों के नालों का पानी ढोती हैं। नदियों ने सभ्यताओं को जन्म दिया। हमारी आज की सभ्यता इन नदियों को अपने गंदे पानी के नाले बना रही है। इस साल मालवा में सामान्य बारिश (35 इंच) से पाँच ही इंच ज़्यादा पानी गिरा है और इतने में ही नदी, नाले, तालाब, बावड़ियाँ और कुएँ चैतन्य हो गए हैं।

अपने पहले अखबार 'नयी दुनिया' की लाइब्रेरी में अब भी पानी के सन् 1878 से रेकार्ड मौजूद हैं। 128 साल की यह जानकारी ही आँख खोलने के लिए काफ़ी है कि इनमें एक ही साल था, 1899 का, जब मालवा में सिर्फ़ 15.75 इंच पानी गिरा था। लोक में यही छप्पन का काल है। लेकिन राजस्थान के ठेठ मारवाड़ से तब भी लोग यहीं आए थे और कहते हैं कि तब भी खाने और पीने को काफ़ी था। इन 128 सालों में एक ही साल अतिवृष्टि का था। सन् 1973 में 77 इंच पानी गिरा था। तब भी यशवंत सागर, बिलावली, सिरपुर और पीपल्या पाला टूटकर बहे नहीं थे।

28 इंच से कम बारिश हो तो वह सूखे का साल होता है। लेकिन ऐसे साल ज़्यादा नहीं हैं। छप्पन के काल ने देशभर में हाय-हाय मचाई हो लेकिन मालवा में लोग न प्यासे मरे न भूखे क्योंकि उसके पहले के साल खूब पानी था और बाद के साल में भी। अपने नदी, नाले, तालाब सँभाल के रखो तो दुष्काल का साल मज़े में निकल जाता है। लेकिन हम जिसे विकास की औद्योगिक सभ्यता कहते हैं वह उजाड़ की अपसभ्यता है।

'नयी दुनिया' की ही लाइब्रेरी में कमलेश सेन और अशोक जोशी ने धरती के वातावरण को गरम करनेवाली इस खाऊ-उजाड़ू सभ्यता की जो कतरनें निकाल रखी हैं वे बताने को काफ़ी हैं कि मालव धरती गहन गंभीर क्यों नहीं है और क्यों यहाँ डग-डग रोटी और पग-पग नीर नहीं है। क्यों हमारे समुद्रों का पानी गरम हो रहा है? क्यों हमारी धरती के ध्रुवों पर जमी बरफ़ पिघल रही है? क्यों हमारे मौसमों का चक्र बिगड़ रहा है? क्यों लद्दाख में बरफ़ के बजाय पानी गिरा और क्यों बाड़मेर में गाँव डूब गए? क्यों यूरोप और अमेरिका में इतनी गरमी पड़ रही है? क्योंकि वातावरण को गरम करनेवाली कार्बन डाइऑक्साइड गैसों ने मिलकर धरती के तापमान को तीन डिग्री सेल्सियस बढ़ा दिया है। ये गैसें सबसे ज़्यादा अमेरिका और फिर यूरोप के विकसित देशों से निकलती हैं। अमेरिका इन्हें रोकने को तैयार नहीं है। वह नहीं मानता कि धरती के वातावरण के गरम होने से सब गड़बड़ी हो रही है। अमेरिका की घोषणा है कि वह अपनी खाऊ-उजाड़ू जीवन पद्धति पर कोई समझौता नहीं करेगा। लेकिन हम अपने मालवा की गहन गंभीर और पग-पग नीर की डग-डग रोटी देनेवाली धरती को उजाड़ने में लगे हुए हैं। हम अपनी जीवन पद्धति को क्या समझते हैं!

प्रश्न-अभ्यास

1. मालवा में जब सब जगह बरसात की झड़ी लगी रहती है तब मालवा के जनजीवन पर इसका क्या असर पड़ता है?
2. अब मालवा में वैसा पानी नहीं गिरता जैसा गिरा करता था। उसके क्या कारण हैं?
3. हमारे आज के इंजीनियर ऐसा क्यों समझते हैं कि वे पानी का प्रबंध जानते हैं और पहले ज़माने के लोग कुछ नहीं जानते थे?
4. 'मालवा में विक्रमादित्य और भोज और मुंज रिनेसां के बहुत पहले हो गए।' पानी के रखरखाव के लिए उन्होंने क्या प्रबंध किए?
5. 'हमारी आज की सभ्यता इन नदियों को अपने गंदे पानी के नाले बना रही है।' क्यों और कैसे?
6. लेखक को क्यों लगता है कि 'हम जिसे विकास की औद्योगिक सभ्यता कहते हैं वह उजाड़ की अपसभ्यता है'? आप क्या मानते हैं?
7. धरती का वातावरण गरम क्यों हो रहा है? इसमें यूरोप और अमेरिका की क्या भूमिका है? टिप्पणी कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. क्या आपको भी पर्यावरण की चिंता है? अगर है तो किस प्रकार? अपने शब्दों में लिखिए।
2. विकास की औद्योगिक सभ्यता उजाड़ की अपसभ्यता है। खाऊ-उजाड़ू सभ्यता के संदर्भ में हो रहे पर्यावरण के विनाश पर प्रकाश डालिए।
3. पर्यावरण को विनाश से बचाने के लिए आप क्या कर सकते हैं? उसे कैसे बचाया जा सकता है? अपने विचार लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

निथरी	–	फैली, चमकीली
चौमासा	–	बारिश के चार महीने
ओटले	–	मुख्यद्वार
घऊँ-घऊँ	–	बादलों के गरजने की आवाज़
पानी भोत गिरयो	–	पानी बहुत गिरा, बरसात बहुत हुई
फसल तो गली गई	–	फसल पानी में डूब गई और सड़-गल गई
पण	–	परंतु
उनने	–	उन्होंने
अत्ति	–	बढ़ा-चढ़ाकर, अतिशयोक्ति में
मालव धरती गहन गंभीर, डग-डग रोटी, पग-पग नीर	–	मालवा की धरती गहन गंभीर है जहाँ डगर-डगर पर रोटी और पग-पग पर पानी मिलता है। यानी मालवा की धरती खूब समृद्ध है
पश्चिम के रिनेसां	–	पश्चिम का पुनर्जागरण काल
विपुलता की आश्वस्ति	–	संपन्नता, समृद्धि का आश्वासन
अबकी मालवो खूब पाक्यो है	–	अबकी मालवा खूब समृद्ध है। यानी इतनी बरसात हुई है कि फसलें हरी-भरी हो गई हैं
पेले माता बिठायंगा	–	पहले माता की मूर्ति स्थापित करूँगा
रड़का	–	लुढ़का
मंदे उजाले से गमक रही थी	–	हलके प्रकाश में सुगंधित हो रही थी
चवथ का चाँद	–	चतुर्थी का चाँद
छप्पन का काल	–	1899 का भीषण अकाल
दुष्काल का साल	–	बुरा समय, अकाल
पूर	–	बाढ़
गाद	–	झाग, कूड़ा-कचरा
कलमल करना	–	सँकरे रास्ते से पानी बहने की आवाज़
सदानीरा	–	हर वक्त बहने वाली नदियाँ

प्रेमचंद

(सन् 1880–1936)

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी ज़िले के लमही ग्राम में हुआ था। उनका मूल नाम धनपतराय था। प्रेमचंद की प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। मैट्रिक के बाद वे अध्यापन करने लगे। स्वाध्याय के रूप में ही उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण की। असहयोग आंदोलन के दौरान उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और पूरी तरह लेखन-कार्य के प्रति समर्पित हो गए।

प्रेमचंद ने अपने लेखन की शुरुआत पहले उर्दू में नवाबराय के नाम से की, बाद में हिंदी में लिखने लगे। उन्होंने अपने साहित्य में किसानों, दलितों, नारियों की वेदना और वर्ण-व्यवस्था की कुरीतियों का मार्मिक चित्रण किया है। वे साहित्य को स्वांत:सुखाय न मानकर सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम मानते थे। वे एक ऐसे साहित्यकार थे, जो समाज की वास्तविक स्थिति को पैनी दृष्टि से देखने की शक्ति रखते थे। उन्होंने समाज-सुधार और राष्ट्रीय-भावना से ओतप्रोत अनेक उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की। कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि की दृष्टि से उनकी रचनाएँ बेजोड़ हैं। उनकी भाषा सजीव, मुहावरेदार और बोलचाल के निकट है। हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने में उनका विशेष योगदान है। संस्कृत के प्रचलित शब्दों के साथ-साथ उर्दू की रवानी इसकी विशेषता है, जिसने हिंदी कथा-भाषा को नया आयाम दिया।

*उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—**मानसरोवर** (आठ भाग), **गुप्तधन** (दो भाग) (कहानी संग्रह); **निर्मला, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, गोदान** (उपन्यास); **कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी** (नाटक); **विविध प्रसंग** (तीन खंडों में, साहित्यिक और राजनीतिक निबंधों का संग्रह); **कुछ विचार** (साहित्यिक निबंध)। उन्होंने **माधुरी, हंस, मर्यादा, जागरण** आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया।*

लेखक परिचय

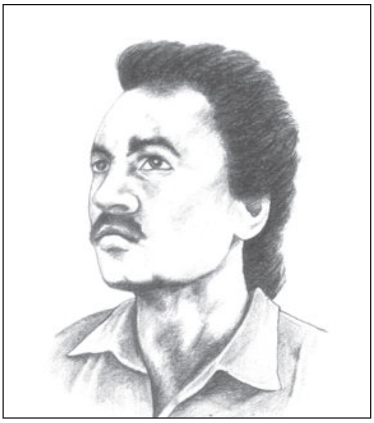

संजीव

(जन्म सन् 1947)

संजीव का जन्म ग्राम बांगरकलाँ, ज़िला सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। उन्होंने बी.एससी. तक शिक्षा प्राप्त की। समकालीन कहानी लेखन के क्षेत्र में संजीव एक प्रमुख नाम हैं। उनकी कहानियाँ अधिकतर 'हंस' में प्रकाशित हुई हैं।

*उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं–**तीस साल का सफ़रनामा, आप यहाँ हैं, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेत-मुक्ति** आदि। इन्होंने एक किशोर-उपन्यास **रानी की सराय** लिखा। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं–**किशनगढ़ का अहेरी, सर्कस, जंगल जहाँ शुरू होता है, सावधान! नीचे आग है, धार, सूत्रधार** आदि।*

संजीव की कहानियों और उपन्यासों में आंचलिक भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। उनकी भाषा में एक ऐसी रवानगी है जो पाठक को बाँधकर रखती है। शब्दों का सटीक प्रयोग संजीव की भाषा की अपनी पहचान है। संजीव हंस पत्रिका के कार्यकारी संपादक भी रहे हैं।

लेखक परिचय

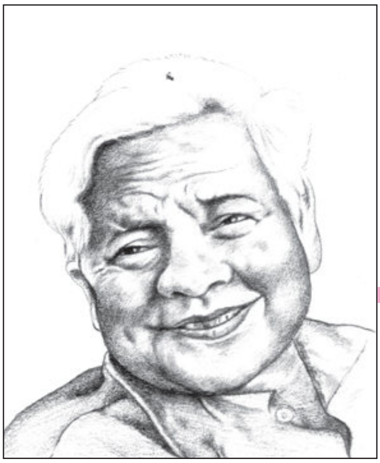

विश्वनाथ त्रिपाठी

(जन्म सन् 1931)

विश्वनाथ त्रिपाठी का जन्म बिस्कोहर गाँव, ज़िला बस्ती (सिद्धार्थ नगर), उत्तर प्रदेश में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में हुई। तत्पश्चात् बलरामपुर कस्बे में आगे की शिक्षा प्राप्त की। उच्च शिक्षा के लिए वे पहले कानपुर और बाद में वाराणसी गए। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। शुरू में उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कालेज में अध्यापन कार्य किया और फिर दिल्ली विश्वविद्यालय के मुख्य परिसर में अध्यापन कार्य से जुड़े रहे। यहीं से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन कर रहे है।

*उनकी रचनाओं में **प्रारंभिक अवधी, हिंदी आलोचना, हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, लोकवादी तुलसीदास, मीरा का काव्य, देश के इस दौर में, कुछ कहानियाँ–कुछ विचार** प्रमुख आलोचना और इतिहास संबंधी ग्रंथ हैं। **पेड़ का हाथ, जैसा कह सका** प्रमुख कविता-संग्रह हैं। उन्होंने आरंभ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ **अद्दहमाण** (अब्दुल रहमान) के अपंभ्रश काव्य **संदेश रासक** का संपादन किया तथा **कविताएँ 1963, कविताएँ 1964, कविताएँ 1965** अजित कुमार के साथ व **हिंदी के प्रहरी रामविलास शर्मा** अरुण प्रकाश के साथ संपादित की। हाल ही में उनकी एक और पुस्तक **व्योमकेश दरवेश** प्रकाशित हुई है जो हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक एवं साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर केंद्रित है।*

*उनको **गोकुलचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार, डॉ. रामविलास शर्मा सम्मान, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार,** हिंदी अकादमी, दिल्ली के **साहित्यकार सम्मान** आदि से सम्मानित किया गया।*

लेखक परिचय

प्रभाष जोशी

(सन् 1937–2009)

प्रभाष जोशी का जन्म इंदौर (मध्य प्रदेश) में हुआ। उन्होंने पत्रकारिता की शुरुआत ***नयी दुनिया*** *के संपादक राजेंद्र माथुर के सान्निध्य में की और उनसे पत्रकारिता के संस्कार लिए।* ***इंडियन एक्सप्रेस*** *के अहमदाबाद, चंडीगढ़ संस्करणों का संपादन,* ***प्रजापति*** *का संपादन और* ***सर्वोदय संदेश*** *में संपादन सहयोग किया। 1983 में उनके संपादन में* ***जनसत्ता*** *अखबार निकला जिसने हिंदी पत्रकारिता को नयी ऊँचाइयाँ दीं। गांधी, विनोबा और जयप्रकाश के आदर्शों में यकीन रखने वाले प्रभाष जी ने* ***जनसत्ता*** *को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। वे* ***जनसत्ता*** *में नियमित स्तंभ भी लिखा करते थे।* ***कागद कारे*** *नाम से उनके लेखों का संग्रह प्रकाशित है। सन् 2005 में* ***जनसत्ता*** *में लिखे लेखों, संपादकीयों का चयन* ***हिंदू होने का धर्म*** *शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।*

प्रभाष जी में मालवा की मिट्टी के संस्कार गहरे तक बसे थे और वे इसी से ताकत पाते थे। देशज भाषा के शब्दों को मुख्यधारा में लाकर उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को एक नया तेवर दिया और उसे अनुवाद की कृत्रिम भाषा की जगह बोलचाल की भाषा के करीब लाने का प्रयास किया। प्रभाष जी ने पत्रकारिता में खेल, सिनेमा, संगीत, साहित्य जैसे गैर पारंपरिक विषयों पर गंभीर लेखन की नींव डाली। क्रिकेट, टेनिस हो या कुमार गंधर्व का गायन, इन विषयों पर उनका लेखन मर्मस्पर्शी है।

लेखक परिचय

टिप्पणी

टिप्पणी